ISSN : 2321-3922
अप्रैल – 2018
BIHHIN05394
वर्ष – 3 अंक–11

# सुसंभाव्य

## हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

# सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

अप्रैल–जून–2018

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–3, अंक–12

संस्थापक–सह–प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

**संयोजक**
डॉ. विजय कुमार सिंह

**संरक्षक**
श्रीमती प्रतिभा सिन्हा

**सम्पादक मंडल**
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
डॉ. अश्विनी

**संस्थापक सदस्य**
श्रीमती छाया पाण्डेय
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
डॉ. राम किशोर शर्मा

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

**सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल**
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर–813210 (बिहार)
मो० : 09931240303, 8210079809
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई–मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–3, अंक–12

# सुसंभाव्य

## हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

## आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतराष्ट्रीय स्तर की पूर्णतः अमूल्य हिंदी त्रैमासिक है। वर्तमान समय में विश्व के 39 देशों के पाठक सहित भारत के 92 शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन को सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि जुलाई– 2018 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ मेल, कोरियर या डाक से सम्पर्क पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हँटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

रचनाएं भेजें :–
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक

सुसंभाव्य

अप्रैल–जून 2018

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394

# अनुक्रम


| | | | |
|---|---|---|---|
| पुरोवाक् | संस्थापक की कलम से | दयानन्द जायसवाल | 5 |
| गृह से विलुप्त होती गृहलक्ष्मी | | सुभाष चन्द्र झा | 6 |
| तुलसी काव्य में समय और समाज | | डॉ. अमर सिंह बधान | 11 |
| मधुमास रात आई है / जीवन क्रम में | | शशिकला झा / अलका अग्रवाल, | 12 |
| लौट आये हैं गीतों के दिन | | शिवदयाल | 13 |
| लोग / उन्मुक्त | | मजुला उपाध्याय मंजुल | 14 |
| हिन्दी के श्रेष्ठ गीत समीक्षक, समीक्षा की कसौटी पर | | डॉ. अवधेश चन्सौलिया | 15 |
| सामाजिक संघर्ष से युद्ध करती कहानियाँ | | डॉ. डी.एन.प्रसाद, | 16 |
| महेंद्र मिसिर : साहित्य आकदमी की अनुपम प्रस्तुति | | डॉ. अर्जुन तिवारी | 17 |
| गेहूँ बनाम गुलाब | | रामवृक्ष बेनीपुरी | 18 |
| सम्मान के दो शब्द | | डॉ. अश्विनी, | 19 |
| तापसी उपन्यास में विधवा जीवन : कुसुम अंसल | | प्रो.गजानन सर्वज्ञ, | 20 |
| हिन्दी ग़ज़ल का नया पक्ष | | राहुल शिवाय | 21 |
| प्रेमचन्द की सौंदर्य दृष्टि | | दयानन्द जायसवाल | 22 |
| अशोक अंजुम की चार ग़ज़लें | | अशोक अंजुम | 24 |
| होली रे होली तेरे रंग कितने | | आकांक्षा यादव | 25 |
| मुक्तक / तू | | संजय कुमार गिरि | 26 |
| शेरू | | आचार्य बलवन्त | 27 |
| जीते जी मर जाना | | नसीम साकेती | 28 |
| मल्लिका | | शमीम राशिद | 31 |
| गाँधी जी के तीन बन्दर / गुलाब | | डॉ. अलका रानी अग्रवाल / डॉ. संगीता गाँधी | 32 |
| बेटी तो बेटी ही है | | मनोरंजन सहाय सक्सेना | 33 |
| पिकनिक का मजा | | अभय कुमार भारती | 40 |
| दूर बहुत आ गये हम | | सोनी कुमारी | 41 |
| टप्परवाली बैलगाड़ी | | अशोक वर्मा | 42 |
| नामर्द / नासमझ | | अब्दुल बारी साकी | 43 |
| पकती खिचड़ी / माँ का सपना / | | सत्य शुचि | 43 |
| शहर से उबा हुआ आदमी, प्रेम / जीवन की सूखी रोटी | | ज्योति सिन्हा / अशोक सिंह | 44 |
| उपस्थिति / सावन का आना भी अब / गीत | | जयप्रकाश मानस / डॉ. अनुज प्रभात / डॉ. मंजरी पांडेय | 45 |
| ग़ज़ल | | उर्मिला प्रसाद | 46 |
| लोकवाणी | | | |

# मंदिर व मस्ज़िद

फिर शुरू हो गई है
सुगबुगाहट
राम के भक्तों एवं
ख़ुदा के बंदों के बीच
वे अपनी अंध आस्था के
घटाटोप शिखर पर
बोते जा रहे हैं
धर्म में दुराग्रह के बीज
डर है कहीं लौट न आये
फिर... फिर और फिर...
आदिम युग की
क़विलाई बर्बरता
और धर्म न हो जाए फिर
नर संहारक
वे चाहते हैं
राम और खुदा की कैद के प्राचीर
और ऊँचा और ऊँचा कर देने
अपने घिनौने स्वार्थ की खेती में
आकाश को समेटे घरौंदे में
ताकि न पहुँच पाये
पीड़ितों की आहें और चीत्कार
बंदीगृह तक।

डॉ. गिरिजाशंकर मोदी
मो : 09934095639

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

# संस्थापक की कलम से

साहित्य समाज की आत्मा है। हमारा समाज और साहित्य से गहरा संबध है और दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। साहित्य मानव मस्तिष्क से उत्पन्न होता है और मस्तिष्क वही ग्रहण करता है, जो समाज से उसे प्राप्त होता है। साहित्य मनुष्य को मनुष्यता प्रदान करता है। मनुष्य न तो समाज से अलग हो सकता है और न साहित्य से। मनुष्य का पालन–पोषण, शिक्षा–दीक्षा तथा जीवन निर्वाह भी समाज में ही होता है। व्यक्ति सामाजिक प्राणी होकर अनेक अनुभव ग्रहण करता है, जब वह इन अनुभवों को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता है, तो साहित्य का रूप बन जाता है। शब्दों की यही अभिव्यक्ति आदमी को श्रेष्ठ और साहित्यकार बना देती है और साहित्यकार का कर्म हो जाता है कि वह ऐसे साहित्य को सृजन करे, जो मानवीय समानता, विश्वबंधुत्व और सद्भाव के हाथ हासिये पर खड़ा आदमी के जीवन को ऊपर उठाने में उसकी मदद करे।

साहित्य का आधार ही जीवन है। साहित्यकार समाज और अपने युग को साथ लिए बिना रचना कर ही नहीं सकता है, क्योंकि सच्चे साहित्यकार की दृष्टि में साहित्य ही अपने समाज की अस्मिता की पहचान होता है। साहित्य मानवजीवन को परिवर्तन के साथ मानव जाति को आपस में जोड़ता है। इसलिए हमारे समाज में साहित्य, समाज का प्रतिबिम्ब माना जाता है यह बीते हुए कल का आईना है और भविष्य के जीवन को दिशा देनेवाला भी है। सच्चा साहित्य कभी पुराना नहीं होता। यह जीवन के मूल्यों को प्रतिष्ठित करता है, समाज और संस्कृति का रक्षक होता है। इसके बिना सभ्य समाज की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

आज हम एक विचित्र दौर से गुजर रहे हैं, मूल्यों को एक कृत स्वरूप दे दिया गया है। आज मनुष्य स्वयं पर कम से कम बंधन चाहता है। मनुष्य अपना जीवन अपनी मर्जी से अपनी शर्तों पर जीना चाहता है। व्यक्ति की आजादी ही आज आधुनिकता की परिभाषा भी बन गई है। आधुनिकता के चक्कर में आदमी ने अपनी परिभाषाओं को लचीला तो बना लिया, लेकिन परिणाम में इस तरह के हादसे होने लगे कि रिश्तों का महत्व मिटने लगा, परिवार बिखरने लगे, पारिवारिक बंधन कमजोर होने लगे, वृद्धाश्रम तेजी से पाँव पसारने लगे। बूढ़े माता–पिता, जिनकी सेवा कभी सौभाग्य का प्रतीक थी, अब उनका अस्तित्व असह्य होता जा रहा है। संवदेनहीनता की हद तो यह है दूधमुँहे बच्चे के पालन–पोषण का दायित्व भी अब बाजार को सौंपा जा रहा है। नैतिक मूल्यों के ह्रास ने आज समाज को मानवता के स्तर से बहुत नीचे गिरा दिया है। भ्रष्टाचार, घपले–घोटाले, रिश्वत और कानून हीनता मानवजीवन के प्रत्येक विभाग में रच बस गई। झूठ, धोखाधड़ी, मिलावट, कालाबाजारी आदि बुराइयों ने समाज में जो बिगाड़ पैदा किया है, मानवता उसके नीचे कराह रही है। आर्थिक स्तर पर आज चारों ओर लूट–खसोट मची हुई है, पूँजीवादी ने सभी नैतिक मूल्यों को रौंदते हुए अवसरवाद और शोषण की संस्कृति को बढ़ावा दिया है। मनुष्य मनुष्य के शरीर से खून की आखिरी बूँद तक निचोड़ लेना चाहते हैं।

आज के इस दौर में साहित्यकार ही सामाजिक व राजनीतिक उतार–चढ़ाव के हर धड़कन को समझ सकते हैं। उसकी हर पीड़ा का अनुभव कर सकते हैं। चूँकि शब्द और संवदेना भी साहित्यकार को है, इसलिए सामाजिक, मानवीय मूल्यों की रक्षा के लिए गति भी प्रदान कर सकते हैं। साहित्यकार प्रकृति से ही प्रगतिशील विवेक–स्वातंत्र्य की चेतना से सम्पन्न एवं स्वाधीन होता है। यह किसी खूँटे में बँधे नहीं रह पाते। इसलिए मनुष्य की संवेदना, चिंता और चिंतन के लिए साहित्यकार को आगे आना ही होगा। साहित्यकार समाजविज्ञानी की तरह वर्तमान की जमीन पर खड़े होकर वर्तमान की विभीषिकाओं से जूझने के लिए एक वैचारिक आंदोलन की शुरुआत ही नहीं करता, बल्कि समस्या के भीतर छिपी सर्जनात्मक संभावनाओं को सांकेतित करते हुए भविष्य को बूनने की जिम्मेदारी भी पाठक को देता है।

सर्जनात्मक साहित्य के द्वारा आनेवाले परिवर्तन संवेदन के परिवर्तन होते हैं, व्यवस्था के नहीं, व्यवस्थाओं में अंतर्निहित मूल्यदृष्टि के भी नहीं, बल्कि मूल्यदृष्टि की भी आधार–भित्ति के परिवर्तन होते हैं। यह आधार–भित्ति ही साहित्यकार की सृजनात्मक प्रतिभा है। साहित्य समाज और संस्कृति को बदलता है तो इसलिए कि वह नये और अपूर्व कल्पित जीवन का उन्मेष ओर आविष्कारक भी है। वर्तमान की त्रासदी है कि सीरिया में आज भारी बेरोजगारी, व्यापक भ्रष्टाचार, राजनीतिक स्वतंत्रता का अभाव या प्रशासनिक दमन आदि के चलते उठी विद्रोह की संभावना और परिणामों का विकृत रूप जो देखने को मिल रहा है। उसमें पूरा सीरिया युद्ध की आग में जल रहा है, चार लाख से ज्यादा लोग मारे जा चुके हैं। लोग बचने के लिए भूखे–प्यासे भागे चले जा रहे हैं। मैं तो कहूँगा दुनिया के साहित्यकार यदि इसके अमन–चैन की सोच लोगों में जगाना आरंभ कर दें, तो कुछ भी परिवर्तन हो सकता है।

सुसंभाव्य के रचनाकारों में आप यह देख पायेंगे कि वे चिंतन की इस पूरी प्रक्रिया के दौरान मानवी विडम्बनाओं और प्रतिकूलताओं से टकराते हुए अनास्था या नकारात्मकता के किसी भी बिन्दु पर विघटित नहीं होते, क्योंकि संवेदना, मानवीय मूल्यबोध के प्रति आस्था और जिजीविषा उनके भीतर की सकारात्मकताओं को सतत जिंदा रखती है।

# गृह से विलुप्त होती गृहलक्ष्मी

**सुभाष चन्द्र झा**
(बिहार प्रशासनिक सेवा)
संयुक्त आयुक्त–सह–सचिव,
क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकार,
भागलपुर प्रमण्डल, भागलपुर–812002
9431208428 7546022022
subhasjha58@gmail.com

अनादि काल से नारी मनुष्य के इतिहास की प्रधान नायिका रही है। उसी को लेकर राष्ट्र उठे हैं और गिरे हैं। उसी के आगे–पीछे धर्मों का अभ्युदय और पतन हुआ। उसी के साथ मानवता हँसी व रोयी है और साहित्य उसी को पाकर धन्य हुआ है तथा दलदल में भी गिरा है। मकड़ी के जालों की भाँति विश्व का इतिहास नारी के ही केन्द्रबिन्दु के चारों ओर फैलता और सिकुड़ता रहा है। आज भी नारी को लेकर संसार में एक आंदोलन,एक हलचल है। उसको देखकर हम आधुनिक सभ्यता और संस्कृति, आधुनिक समाज के विषय में एक राय कायम कर सकते हैं। सदा ही वह अपने युग की सभ्यता का द्योतक बनकर रही है। क्योंकि वह महाप्रकृति की सृजनात्मक शक्ति का प्रतीक है। इसलिए उसमें जो भाव उदय होते हैं, उसके हृदय में जो भाव राशि एकत्र होती है,वही समाज में प्रतिबिम्बित होती है।

पुरुष ही नारी का नियामक,संरक्षक तथा अभिवर्द्धक है। यदि नारी पुरुष से यत्किंचित भी अपने को पृथक सत्तावाली एवं स्वतंत्र मानती है, तो उसकी वही गति होगी, जो वृक्ष से पृथक होकर इधर–उधर गिरने वाले पत्तों की होती है। पुरुष संचायक, नारी विभाजक है। नारी और ब्राह्मण की रक्षा करने लिए के धर्मयुद्ध में किसी को मारना पड़े तो भी दोष नहीं होता। (8/345 मनुस्मृति) स्त्री की अनुकुलता ही स्वर्ग है और उसका प्रतिकूल होना नरक से भी भयंकर है। स्त्री के समान दूसरी कोई औषधि नहीं। समस्त दुःखों को दूर करने की दवा एकमात्र स्त्री है। स्त्री के बिना घर को घर नहीं कहते, स्त्री है तभी घर है। स्त्री देवताओं द्वारा प्राप्त वरदान स्वरूप सखा है। यदि पत्नी कभी अप्रिय वचन भी बोल दे, तो स्वयं उससे अप्रिय वचन न कहें, क्योंकि रति–प्रीति और धर्म–कर्म सब स्त्री के अधीन है। नारी में असाधारण पवित्रता है, वह कभी भी पूर्णतया अपवित्र नहीं होती। नारी का सारा शरीर ही पवित्र है। नारी की विशेषता उसकी प्रज्ञा है, जिसके द्वारा वह सभी विषयों में सामंजस्य स्थापित कर लेती है और पुरुष की विचार–बुद्धि को नियमित करती है। जिसपर नारी की कुदृष्टि है, उसपर भगवान का भी अभिशाप रहता है। जिस पुरुष के व्यवहार से नारी की आँखों से आँसू बहते हैं, वह देवता के श्राप के दावानल से भस्म हो जाता है। नारी गृहलक्ष्मी है, उसके सान्निध्य से गृहदेवता प्रसन्न होते हैं।

नारी पुरुष के लिए अनुपम सहकारिणी है, क्योंकि यदि नर जीवरूप से विचरण करता है, तो नारी बुद्धि बनकर उसका सहयोग देती है। यदि पुरुष दिन बनकर श्रम द्वारा तपता है, तो नारी रात्रि बनकर उसके श्रम को हरती है। यदि पुरुष मन बनकर संकल्प–विकल्प करता है, तो नारी वाणी बनकर उसका समाधान करती है। यदि पुरुष सूर्यरूप बनकर जगत को प्रकाशित करता है, तो नारी द्यौ बनकर उसको अवलंबन देती है। यदि पुरुष इन्द्र बनकर जलवृष्टि करता है, तो नारी पृथ्वी बनकर उस जल से प्राणियों का पोषण करती है। पुरुष यदि दाता है,तो नारी पालिका है। पुरुष यदि नारायण बनकर अगाध जल में भयंकर शेष शय्या पर सोना चाहता है, तो नारी महालक्ष्मी बनकर अपने अद्‌भुत वैभव द्वारा उसी को सुख–शय्या बनाकर चरण चाँपती है। पुरुष यदि क्रोध है, तो नारी शान्ति है। पुरुष यदि सागर है, तो नारी नदी है। पुरुष भर्ता है, तो नारी भार्या है। पुरुष यदि वेप्ता है, तो नारी विद्या है। पुरुष यदि मायी है, तो नारी माया है। पुरुष यदि बंधक है, तो नारी शृंखला है। पुरुष यदि मोचक है, तो नारी मुक्ति है। पुरुष यदि कर्ता है, तो नारी क्रिया है।

पुरुष, नारी के अंग–उपांग, आकृति–प्रकृति, कार्य करण, रहन–सहन, व्यवहार, दर्शन, स्पर्शन, बोलचाल सब कुछ परस्पर सापेक्ष है। नारी पुरुष का सचमुच वाम अंग है। पुरुष शक्तिमान है, तो नारी शक्ति है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध; इन सबका समुच्चय ही संपूर्ण स्त्री है, इन्हें वह हरण वा वहन करती है। पुरुष की समस्त ज्ञानेन्द्रियों की तृप्ति अकेली स्त्री से एक ही समय में एक साथ ही हो सकती है। नारी सौंदर्य, सौंदर्य के प्रेम, प्रेम में अनन्यता और अनन्यता में आनंद है। आनंद नारी में ही है। वह श्री, शक्ति, चित्ति है। उसकी मुस्कान से सृजन, उसके दूध में स्थिति और उसकी आह में प्रलय छिपा है। उसके मोह में स्नेह, बंधन में दान, जीवन में उत्सर्ग है। वह अपूर्ण में पूर्ण है, भक्ति है, श्रद्धा है। इस असार संसार में सबसे उत्तम उपभोग्य वस्तु है प्रेम और नारी।

पुरुषों द्वारा सम्मानित होने के कारण स्त्रियों का वैदिक नाम मैना है। (निरु 3/21) पति उसमें गर्भरूप से उत्पन्न होता है, इसलिए उसे 'जाया' कहते हैं। (ऐ.ब्रा. 7/13) पुत्र संतति से ही स्त्री की प्रशंसा है। (10/86/9) स्त्री को इस तरह रहना चाहिए कि दूसरा मनुष्य उसका रूप देखता हुआ भी न देख सके (लज्जापूर्ण), वाणी सुनता हुआ भी पूरी न सुन सके (मंदवाणी 10/71/4) पत्नी के बिना पुरुष स्वर्ग नहीं जा सकता। स्त्री का प्रेम सुख में और दुख में अद्वैत (एकाकार) रहता है, समग्र अवस्थाओं में अनुकूल रहता है। इससे हृदय को विश्राम मिलता है। स्त्री में पारिजात की सुगंध है, पुरुष चित्त को विस्मित कर देने की अद्‌भुत क्षमता है। पुरुष की पूर्ति नारी के संसर्ग में ही है। सभी धर्मों और सभ्यताओं का यही उपदेश है कि स्त्री सबसे बड़ी भोग्य वस्तु है। अनंगरंग में कहा गया है–छलकपट के घर इस निस्सार संसार में मृगनयनी स्त्रियों का सुख ही एकमात्र सार है। सृष्टि संचालनार्थ ब्रह्मा की इच्छा हुई–एकोहं बहुस्याम अर्थात् एक से अनेक हो जाऊँ और इसके लिए उन्होंने ब्रह्म और प्रकृति की रचना की। इस प्रकार धरती पर पुरुष (ब्रह्म) और नारी (शक्ति, प्रकृति, माया) की रचना हुई। वाल्मीकि रामायण में गृहस्थाश्रम को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है। पत्नी ही गृहस्थ का मूल है, अतः वैदिक काल से ही उसे घर की आत्मा या प्राण समझा जाता रहा है। महाभारत में गृहिणीहीन घर को जंगल बताया गया है। मुद्राराक्षस के अनुसार गृहिणी को घर की व्यवस्था के उपायों में प्रवीण, गृहस्थाश्रम की स्थिति का कारणभूत, धर्म, अर्थ और काम को संपन्न करनेवाली तथा कर्तव्यकर्म की उपदेशिका और नीति विद्या स्वरूपा कहा गया है।

नारी सदा पुरुष की छत्रच्छाया में अपने गुण–गरिमा का विस्तार करती हुई निवास करती आयी है। पुरुष वही है जो वीर हो, वीर्यसम्पन्न हो, अपने को तथा अपने आश्रितों को रक्षण करने की क्षमता रखता हो। स्त्रियों में मृदुता, रजोगुण तथा भीरुता विशेष होने के कारण उनके पतन की अधिक संभावना है। अतः सर्वप्रकारेण उसकी रक्षा करने की तथा उनके मायाजाल से बचे रहने की वैदिक सलाह है। स्त्री माया अथवा प्रकृति की प्रतीक भी है, अतः

उसमें तद्नुकूल गुणों की भी छाया रहती है। वह अघटन घटना पटीयसी भी है। नित्य नूतन है, जादू करनेवाली, भ्रम में डालनेवाली मोहिनी भी है। उनके प्रेमपाश से बँधे हुए पति का मन अन्यत्र विचलित नहीं होता। पति के लिए ही वह हाव–भाव कुल 28सात्विक भावों का प्रदर्शनकरती है। गृहस्थ के रंगमंच पर नारी अपने पति नायक की नायिका है। क्षेत्र एवं बीज की शुद्धि ही वंश की पवित्रता है। समस्त कामनाओं की अंतरतम कामना है कामिनी के लिए प्रणयवान पुरुष। नारी यदि वस्तुतः क्रुद्ध हो जाए, तो फिर लोक या शास्त्र कोई उसे थाम नहीं सकता। पुरुष के प्रति अपने को अर्पित करके नारी अपने को भूली–सी रहती है। नारी अंग में देवताओं का वास है। जिसने दुःख में पड़ी एक नारी की रक्षा की, उसने मानो समस्त पापों का प्रायश्चित कर लिया, समस्त पुण्यों का संचय कर लिया। वह घर में रहकर भी इतनी उग्र साधना कर सकती है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश तक उससे डर जाते हैं। यह त्रिदेवों को बच्चा बना सकती है, सूर्य की गति रोक सकती है, यमराज से पति के प्राण वापस लौटा सकती है और सर्वज्ञ विष्णु को शाप दे सकती है। सती साध्वी प्राणा नारी के लिए संसार में कोई असाध्य कार्य नहीं, वह जो भी चाहे कर सकती है। भगवान ने भक्तों से व पतिव्रताओं से हमेशा ही हार मानी है। पतिमात्र पुरुषं मन्यमाना–पति के अतिरिक्त ऐसी नारी के लिए दूसरा कोई पुरुष ही नहीं होता है। नाशशक्ति की संपूर्णता और चरम सीमा की भगवती का स्वरूप है।

अगर जाति है तो सिर्फ दो 'पुरुष और नारी'। पौरुष का अर्थ है–पुरुषार्थ, साहस, पराक्रम, सक्रियता, बहादुरी। नारी के प्रकृतिगत आठ वैशिष्ट्यों में जो नारी चरित्र की अमूल्य थाती है, जिसके द्वारा नारी जितना ही समृद्ध होगी, उसका जीवन उतना सुंदर और सार्थक होगा। उनमें 'सुप्रजनन' ही सर्वाधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि सृष्टि की रक्षा करना ही धर्म है और सृष्टि रक्षा के उद्देश्य से ही ईश्वर ने नारी की सृष्टि की है। नारी अपने स्वामी के माध्यम से ही संसार का उपयोग करती है, उसी के गौरव से गौरवान्वित होती है। नारी के दाहिने हाथ में सेवा, बायें हाथ में सान्त्वना, हृदय में आवेग और अनुरक्ति, मुख में सहानुभूति, नाक में स्नेह ममता, कानों में वेदश्रुति, मस्तिष्क में बोध–विवेचनाशक्ति,चरणों में चांचल्य और कर्मण्यता तथा सर्वांग में वृत्ति निवेदन (समर्पण की भावना) अंतर्भावित है।

सैंकड़ों आघात, अभाव में भी स्वामी से विच्युत नहीं होना, नारी का वैशिष्ट्य है। छाया को जिस प्रकार सैंकड़ों आघात से भी विच्युत नहीं किया जा सकता है–वह पीछे–पीछे चलती है, स्त्री–चरित्र भी ठीक ऐसा ही होता है। पुरुष अकेले आधा है। नारी भी अकेली आधी है। दोनों मिलकर एक पूर्ण जीवन होता है। नर–नारी जैसे व्यक्ति विशेष और उसकी छाया। स्त्रीलिंग ने पुल्लिंग का अर्थात् नारी में पुरुष का समावेश है। जैसे 'Female is Male' 'Woman is Man' Lady is Lad " Mrs. is Mr. नारी में नर, दुल्हिन में दूल्हा, पत्नी में पति, श्रीमती में श्री, पतिव्रता में पति, बालिका में बालक, पुत्री में पुत्र, बेटी में बेटा, लड़की में लड़का आदि लेकिन इस अभिन्नता में भिन्नता है। नारी का शारीरिक गठन एवं चलन, चरित्र में एक गमन प्रवणता है। नारी का मन सत या एकासक्ति से परिपूर्ण है, इसलिए सती है। सतीत्व की धारणा इसी से बनी है। एक अटूट प्रीति उत्पादक आकर्षक है, उसमें मानसिक परिचर्या से मन को निर्भीक और सत् में प्रफुल्लित रखकर निष्ठावान के द्वारा स्वस्थ संतान की जननी बन सकती है। स्त्री जब अभाव और आसक्ति से खुद को बचा लेती है, तो सतीत्व को अक्षुण्ण कर लेती है।

स्त्री 'जाया' इसलिए कहलाती है, क्योंकि उससे पुरुष अपने को जन्म ग्रहण करता है अर्थात् जिससे अपने को जन्म ग्रहण किया जाता है। जिसके भीतर प्रवेश कर विभिन्न रूप में आविर्भूत हुआ जाए, वही 'जाया' है। पत्नी–'पा' धातु से पालन –रक्षण धर्मी जो नारी है, वही पत्नी है। भार्या–'भू' धातु, जो स्वामी का भरण, पोषण, प्राप्ति, दर्शन व ग्रहण करके तृप्ति पाती है। वधू–'वह' धातु से जिसका अर्थ है वहन करना, जो वहन करे। पति–जिसका आश्रय करके प्रतिपालित होता है। बाप–जो जीवन को वहन करता है, फादर इज द सीड एंड मदर इज द स्वाइल। भर्ता–जो भरण करता है, पालन करता है। माँ–मापन करना, जो संतान की जीवन को परिमापित कर देती है। वर–श्रेष्ठ, वरणीय। विवाह–'वि' विशेष रूप से 'वह' जीवन और वर्द्धन की ओर वहन करना। नारी का पुरुष का संवर्द्धन करने की यह प्रवृत्ति और पुरुष का इस प्रकार के संवर्द्धित होने की प्रवृत्ति का समाधान की आवश्यकता होने से ही विवाह की सृष्टि हुई। नारी पुरुष को संवरण करना चाहती है, पुरुष इसलिए नारी को सब प्रकार से वहन कर अपने जीवन को विस्तार से परिलुप्त करना चाहता है, यही विवाह है। स्त्री–'स्तै' धातु से, जो घिरकर दीप्ति पाती है। यह लता के समान है। स्वामी–स्त्री का बचना जिसपर निर्भर और भर्तारूप में जो पालन करता है। संतान–'समतान'। पुरुष का भाव शरीर स्त्री में प्रविष्ठ होकर वही तान–विशिष्ट हो संतान रूप में जन्म लेता है। समतान विशिष्ट रहने के कारण ही संतान है। माता–पिता के भाव, देह ही संतान है। अपने पुरुष को अपने अस्तित्व की तरह अनुभव करके अपने चरित्र के द्वारा, चाल–चलन, भाव–भाषा, व्यवहार आदि की अभिव्यक्ति द्वारा यदि घोषणा करती है कि वह अपने ही पुरुष का अस्तित्व है, तभी स्त्री के लिए सतीत्व संबोधन उपयुक्त और सार्थक है। शक्ति को रज और शिव को बिन्दु की उपमा दी गई है। यही सूर्य–चन्द्र है। इनका संयोग होने पर परम पद प्राप्त होता है। दोनों का मिलन स्वयं महाशक्ति का सृजन है। सहचरत्व के कारण ही शांति, तृप्ति और निश्चिन्तता का बोध होता है। पूरक घटकों की दूरी समाप्त होने पर सरसता और सशक्तता की अनुभूति प्रायः होती रहती है।

नारी की व्युत्पत्ति 'नार' से हुई है। नारयति इति नारी अर्थात् नारी वही है, जो धारण करती है एवं पालन–पोषण द्वारा प्रस्फुटित कर वृद्धि की ओर अग्रसर करती है। पुरुष पूरण स्वभाव सम्पन्न रहने के कारण पुरुष कहलाता है। नारी अक्रियाशील (पैसिव) भाव है, पुरुष कार्यकारी (एक्टिव) भाव। नारी के वैशिष्ट्य हैं–निष्ठा, धर्म, उल्लास, सुश्रूषा, सेवा, सहाय, संरक्षण, प्रेरणा, सुप्रजनन। पुरुष के वैशिष्ट्य हैं–पौरुष, गौरव और गंभीरता। नारी वृद्धि लाती है, पुरुष वृद्धि करता है। नारी का कार्यक्षेत्र अंतःपुर होता है, पुरुष का कार्यक्षेत्र बाहर होता है। नारी सृजनकारी शक्ति है, पुरुष सृजित होने की इच्छा है। नारी पुरुष को स्वस्थ, सुखी व वर्द्धित करना चाहती है, पुरुष नारी में विश्राम करना चाहता है। नारी संतान–वत्सला मातृरूप, अपने क्षेत्र में धातृ, पात्री और माता रूप में सर्वश्रेष्ठ है। पुरुष पिता है। पिता से हम पाते हैं–धी अर्थात् मेधा, प्रकृति एवं स्वभाव। नारी ऋणकेन्द्र है, पुरुष धनकेन्द्र है (निगेटिव–पॉजिटिव)। नारी पुरुष को लक्ष्य करके चलती है, पुरुष गौरव को लक्ष्य करके चलता है। नारी कोमलांगी, भीरू स्वभाव, सहज, विनीता,सौंदर्यमयी है। घर उसका चिरप्रिय आश्रय और पुरुष अवलंबी है। योग्य पुरुष की सहधर्मिणी, सहचरी होना उसका गौरव और मातृत्व ही चरम सार्थकता है। पुरुष सेवा, उद्यम जीवन और वृद्धि लेकर प्रलय समान चल पड़ने का नाम है। जय, यश, गौरव के साथ व्यष्टि और समष्टि में अपने आदर्शन की प्रतिष्ठा करना ही पुरुष की प्रकृति है। नारी मिट्टी है, जो बीज को पुष्ट एवं वर्द्धित करती है, पुरुष बीज है। नारी मापन करती है, माँ है, पुरुष बपन करते हैं, बाप है। नारी के त्वक् रक्त, मांस मिलता है। माँ के चलते शारीरिक दोष–गुण संतान में होते हैं। पुरुष से संतान को अस्थि, स्नायु और मज्जा प्राप्त होता है। पिता के चलते मानसिक दोष–गुण संतान में पाये जाते हैं। जननी को स्वर्ग से भी बढ़कर दर्जा देवताओं ने प्रदान की है।

मानव जीवन के चार पुरुषार्थ क्रमशः धर्म, अर्थ काम और मोक्ष के मूल में नारी है। 'भागवत और विष्णुपुराण में स्त्री विश्व के समूचे गुण और सौंदर्य का आधार तथा पुरुष की अपूर्णता को पूर्ण करनेवाली माना गया है।

पुरुष के लिए सबसे बड़ी भोग्य वस्तु स्त्री है। यह भी सभ्यताओं, धर्मों का उपदेश है। बृहदारण्यकोपनिषद् में 'काममय एवायं पुरुषः' अर्थात् पुरुष काममय है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में स्वयं को कामदेव का स्वरूप मानते हुए कहा है–प्रजनश्यामि कंदर्प। अर्थात् धर्मशास्त्रविहि रीतियों से संतानोत्पत्ति में मैं ही कामदेव हूँ।मनुस्मृति 3/60 में मनु ने कहा है–

शोचन्ति यामयो यज्ञ विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि सर्वदा।
संतुष्टो भार्यया भर्ता भार्यया तथैव च।
यस्मिन्नैव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्।।

अर्थात् जिन घरों में स्त्रियाँ दुखी होकर रात–दिन शोकग्रस्त रहती हैं, वे घर शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।जिन घरों में वे शोक न कर सदा आनंद में मग्न रहती हैं, उन घरों की सदा उन्नति होती है।जिस घर में स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री संतुष्ट रहते हैं, दोनों एक दूसरे से प्रसन्न रहते हैं, उस घर में सदा कल्याण रहता है। धन–दौलत, सुख–ऐश्वर्य और संतान की वृद्धि होती है।

विशिष्ट शक्ति की दृष्टि से जब हम वर्तमान नारी को देखते हैं, तब आश्चर्य विमूढ़ होना पड़ता है। उसका यह दावा है कि वन्दिनी प्राचीनताओं के शव पर खड़ी नूतन स्वतंत्रता का संदेश देने आयी है–यह अत्यन्त दुखद है, यह प्रचार का, नारों का युग है। मानव का विचार और उनकी चिंतना आज शिथिल पड़ गई है, इसलिए स्वतंत्रता का नारा जो कुछ देता है, वह स्वंतत्रता नहीं, बल्कि स्वतंत्रता का झूठा आभास भर है, अन्यथा क्या सचमुच आज की नारी पहले से अधिक स्वतंत्र है?नहीं, आज की स्वतंत्र कही जानेवाली नारी जो अधिकांश में केवल रमणी बनकर रह गयी है, अपनी बाह्य स्वतंत्रता, अपने नागरिक अधिकार, अपनी सभा सोसायटियों के बाजवूद एक विशेष दृष्टिकोण के प्रचारक पुरुष वर्ग के हाथ का खिलौना मात्र है। यह प्रबलता के साथ दावा तो जरूर करती है कि वह पुरुष के मनोरंजन की सामग्री अब नहीं है, पर वह जरा विचार करे तो देखेगी कि आज वह पहले से कहीं अधिक पुरुष के मनोरंजन की सामग्री बन गयी है। आधुनिक सभ्यता के जितने भी तीर्थस्थान हैं यानी क्लब, सिनेमा, कॉलेज, ब्यूटी शो, प्रसाधनगृह, प्रदर्शनियाँ, या जो भी त्योहार या मेले हैं, जैसे फँसी फेयर फ्लावर शो, बेबी शो, पार्टियाँ इत्यादि उनमें कदाचित ही एक स्त्री ऐसी होती है जो सादगी,शील, गरिमा और गौरव की प्रतीक हो, इसके विरुद्ध वह प्रसाधन द्रव्यों से दबी हुई पुरुष की हवस भरी आँखों का शिकार और पुरुष का अपनी आँखों का शिकार करनेवाली, नाज नखड़ों से पूर्ण मानो रूप के हाट में अपना मूल्य वृद्धि करने को विकल है। ऐसी जगहों में ऐसा सौंदर्य कहाँ दिखायी देता है, जिसके आगे आँखें झपक जाएँ, तेज और चरित्रबल से दमकता सौंदर्य, जिसके प्रभाव से विषयोन्मत पुरुषों की वासना शान्त हो जाती है या कम से कम वह सौंदर्य जो मन को कुरेदता नहीं, वासनाएँ नहीं उत्पन्न करता, मन को अशान्त नहीं करता, प्रभु के अमित सौंदर्य की प्रतिकृति सा हृदय में उस नारी की महत्ता और श्रेष्ठता का बोध उत्पन्न करता है। प्रदर्शनियों में चलता–फिरता रूप का एक बाजार सजा रहता है।लोग वहाँ रूपसी अप्सराओं को देखने जाते हैं।यदि स्त्रियाँ इन प्रदर्शनियों का बहिष्कार कर दे, तो वे तप हो जाएँ। आखिर वे इतने शृंगार, इतनी बाहरी सज–धज का आश्रय क्यों लेती है?किन्हें आकर्षित करना उनका लक्ष्य होता है?क्या वे अंदर से तृप्त किसी दूसरे की ओर न देखकर जो कुछ उनका है, उसमें तन्मय नारियों का उदाहरण हैं, यह सब पुरुषों को आकर्षित अथवा कम से कम चमत्कृत करने के लिए है, भले वे अज्ञात भावनावश ऐसा करती हों।

परिणाम यह है कि विवाहित जीवन में सर्वत्र आज रूपसी रमणियों की माँग बढ़ रही है। विवाह के जितने विज्ञापन आजकल पत्रों में निकलते हैं, उन सबमें लड़की सुंदर, चंपकवर्णी की माँग ही की जाती है और शिक्षित समाज में यह माँग बहुत ज्यादा है।स्पष्ट है कि स्वतंत्र और सभ्य आधुनिकताओं ने पुरुष में रूप लिप्सा की जबर्दस्त प्यास उत्पन्न कर दी है। आज एक कर्कशा,अवगुणों से पूर्ण, आलसी पर रूपवती कन्या के सरलता पूर्वक विवाहित हो जाने की उस कन्या की अपेक्षा कहीं अधिक संभावना है, जो स्वस्थ है, परिश्रमी है, सुशील है, पर रूपवती नहीं। आजकल की सभ्यता का समस्त जोर बाह्य आलंबनों पर है, इसीलिए वह दिन–दिन दिखाऊ, प्रदर्शनात्मक होती जाती है और चूँकि जीवन के कठोर कर्मक्षेत्र में ये आलंबन ज्यादा दिन तक टिक नहीं सकते, क्योंकि वहाँ तो आंतरिक गुण ही काम आते हैं, इसलिए कुछ ही समय में विवाहित जीवन असंतुष्ट,चिड़चिड़ा, एक दूसरे के प्रति शोषण और उत्पीड़न से भरा और हाहाकार हो उठता है। कल्पना की रंगीनियाँ, जो कविता के प्रतीकों से पूर्ण दिखती थी और पाँव पड़ने न देती थीं, जीवन की कठोर चट्टानों से टकराकर नष्ट हो जाती है।

स्पष्टतः इस वृत्ति के कारण नारी, पुरुष की अपेक्षा अधिक घाटे में रहती है। रूप और विलास का खेल अधिक दिन नहीं चल सकता, पर जब पुरुष को चोट लग जाती है, तब उसका नियंत्रण कैसे किया जा सकता है?नियंत्रण जैसी कोई चीज भी तो आज की सभ्यता बर्दाश्त नहीं करती, इसलिए हम देखते हैं कि जो नारियाँ स्वतंत्रता का नारा जितनी तेजी से लगाती है और जो अपने मन से युक्त चुनाव करती हैं, उनमें से अधिकांश कहीं अधिक असंतुष्ट, अतृप्त देखी जाती है–कुछ ही दिनों में प्रायः उनका स्वप्न भंग हो जाता है। अपनी स्वतंत्रता के झूठे दावे के कारण वे रोग और समस्या के मूल कारणों का विचार फिर भी नहीं कर पातीं, बल्कि समस्त दोष पुरुषों के सिर मढ़कर उन्हें स्वार्थी और पीड़क कहकर बैठ जाती हैं।

समस्याओं का समाधान इस प्रकार तो होता नहीं, अपितु समस्या और भी जटिल होती जाती है। नारी अपना एक अलग वर्ग बनाती जा रही है। वर्गभावना का तेजीसे प्रचार किया जा रहा है। स्त्रियों की पत्र–पत्रिकाओं में पुरुष को विरोधी, शत्रु, विपक्षी समझकर अधिकांश लेख लिखे जाते हैं। जैसे कटघरे में खड़े अभियुक्त पुरुष से जवाब–तलब किया जा रहा हो और उसे अधम, अन्यायी कहने से नारी को वह संतोष मिल रहा हो, जो प्रतिपक्षी को अपमानित कर प्राकृत जनों को होता है।

कहाँ एक जीवनव्यापी सहयोग की साधना का जीवन, जहाँ दो से एक हो जाने और एकतत्व की परम अनुभूति के क्षणों में नवीन जीवन की सृष्टि करने की प्रेरणा, कहाँ यह वर्गचेतना का विकास, पीड़क, मालिक और दासी के रूप में बँटवारा और एक दूसरे के प्रति प्रतिहिंसा से पूर्ण मन। क्या इसी नींव पर सहयोग के जीवन का निर्माण होगा?क्या इसी नींव पर नवीन समाज व्यवस्था का स्वर्ग खड़ा किया जाएगा?

ऐसा स्वर्ग केवल मृगमरीचिका है, सब्जबाग है, जिसका प्रलोभन देकर स्वार्थी, आधुनिक सभ्यता की विलास भावनाओं में डूबे पुरुषों ने नारी को गुमराह पथभ्रष्ट कर दिया है। अधिकार और स्वतंत्रता, कैसे मोहक, मायावी, जाल में फँसाने और नशे में विस्मृत कर देनेवाले शब्द हैं ये। इनके द्वारा हर प्रकार के यम–नियम और नियंत्रण से पुरुष ने ही नारी को मुक्त किया। क्यों?इसलिए कि इसे नारी से गौरव, उसका मातृत्वबोध छीन लेना था और उसे रमणी बनाना था। इसलिए कि युग–युग के संस्कारों से रक्षित नारी की पवित्रता का कवच टूट जाए और वह पुरुष के मनोरंजन और विलास का केन्द्र बनकर रहे, भले ऊपर से उसे स्त्रियों का पीड़क कहकर गालियाँ ही देती रहे और अपनी स्वतंत्रता की दुहाई ही देती रहे। अपने संपूर्ण विरोधों और घोषणाओं के बावजूद आधुनिक नारी पुरुष के वैभव विलास की प्रदर्शनी और उसके ड्राइंग रूम की शोभा भर है।

स्त्री–पुरुष का जीवन तर्कों और प्रवंचनाओं की नींव पर नहीं उठाया जा सकता। वह गहरी सहानुभूतियों और कठोर यथा दीर्घकालिक साधनाओं से

ही निर्मित हो सकता है। भारतीय गृहजीवन का निर्माण इसी प्रकार किया गया था। वह जीवन को उच्चतम उद्देश्यों की ओर अग्रसर करता था, उसी सीमा तक, जहाँ तक समाज के रक्षण और संवर्धन में वह सहायक हो और विकास क्रम की अगली श्रेणी तक पहुँचाने का साधन बने। इसीलिए हमारी संपूर्ण सभ्यता और संस्कृति में नारी का माता रूप ही आदर्श समझा गया। प्रधान प्रस्तर शिल्प में नारी शान्ति और गौरव से पूर्ण मुख, मंद मुस्कुराहट और पुष्ट भरे हुए उरोज, जिनपर राष्ट्र की संतति पलती थी। मातृत्व की महिमा नारी की रमणीत्व से, पुरुष को मनोरंजन और भोग के ऊपर उठाती थी। ऐसा नहीं कि जीवन में रमणीयता न हो या शृंगार न हो–इनका तिरस्कार नहीं था, पर इनपर जोर भी नहीं था। अपनी संपूर्ण रमणीयता के बीच भी नारी मातृत्वबोध से प्रीत करने का लक्ष्य सामने रखती थी। जीवन एक आदर्श से अनुप्राणित था, जिससे विपत्तियाँ हल्की हो जाती थीं और मार्ग के काँटों का दंश शिथिल पड़ जाता था।

भागवत पुराण और विष्णु पुराण में स्त्री विश्व के समूचे गुण और सौंदर्य का आधार तथा पुरुष की अपूर्णता को पूर्ण करने वाली माना गया है। बृहदारण्यक उपनिषद में काममय एवायं पुरुष:अर्थात् पुरुष काममय कहा गया है। सारभूतं सर्वेषां परमानन्द सहोदरम्। नारी ईश्वर की महान और सर्वोत्तम कलाकृति कही जाती है। इस असार संसार में नारी ही पृथ्वी का सार समुच्चय है। प्रकृति की सभी श्रेष्ठ कलाओं, उन्नत विधाओं तथा क्रियात्मक शक्तियों में नैसर्गिक रूप से नारी स्वयं ही विशिष्ट सौंदर्य, माधुर्य, सुगंध, शक्ति और आकर्षण के रूप में विद्यमान रहती है।

आज विश्वास, खींचातानी और असहिष्णुता के वातावरण में हम जीवन आरंभ करते हैं। जीवन उस वृक्ष के समान, जिसकी जड़ें भूमि की गहराई में प्रवेश न कर पायी हों, आंधी के झटकों में लड़खड़ाता और बहुधा गिर ही जाता है। जिंदगी के दो झटकों में आँखों की खुमारी और दिल के सपने उखड़ जाते हैं। फिर जीवन की मंजिल कठिनाइयों से भर जाती है–पग–पग पर समस्याओं और जटिलताओं से भरी हुई। कल जिस नारी की वाणी में कोयल की कूक सुनाई पड़ती थी, आज उसमें कौआ काँव–काँव करता सुनाई पड़ता है, जो पत्नी हृदय की आशा और आँखों की ज्योति थी, वह निराशा की कठोर मंजिल की तरह असहाय हो जाती है। जो पति जिंदगी का नशा बनकर आया था, वह खुमारी के बाद की थकान और शिथिलता के रूप में आता है और जिसे देखकर पत्नी की आँखें ठंढी और तृप्त हो जाती थीं, वह अब धूप से जलते हुए लंबे चटियल मैदान की तरह भयानक लगता है।

वर्तमान वातावरण में वही हो रहा है, इसलिए नारी मानव जाति की माता होने का अपना दावा छोड़ती जा रही है, सभ्यता और संस्कृति के निर्माण में उसका जो स्थान है, उससे हट रही है। वह अपने को गलत देख रही है, गलत समझ रही है और प्रतिक्रिया तथा प्रतिहिंसा की धारा में बहती जा रही है। इस विस्मृता और मूर्च्छिता नारी को लेकर सभ्यता का मेरूदंड टेढ़ा हो रहा है। इस दृष्टिकोण के कारण दिलों में खिंचावट आयी है, अंतर पड़ा है, खाई गहरी हुई है, जीवन में संशय, हृदय में उलझन और दिमाग में खीझ एवं अतृप्ति आयी है–जिससे नारी का जीवन न केवल दुखी, बल्कि अशक्त और अगम्य भी होता जाता है। गृह, संतति और समाज के शासन और नियमन की शक्ति वह खो बैठती है। भले वह ऊपर से हँसे, उत्सवों में शामिल हो और अपनी स्वतंत्रता एवं सुख की घोषणा करती फिरे, पर अंदर से खोखली, बिल्कुल खोखली हो जाती है–सूखी लकड़ी के समान, जिसकी आकृति ऊपर ज्यों की त्यों कायम हो, पर जिसका गूदा सबका सब घुन के पेट में चला गया हो और कोई नहीं जानता कि कब वह कड़कड़ करके टूट जाएगी और अभिनय समाप्त हो जाएगा। ऐसी नारी अपने लिए और समाज के लिए भयानक खतरा है। अपनी हँसी में भयंकर विष छिपाये हुए, असंतोष के दाने बिखेरती हुई, अपने पदचाप से दिशाओं को कंपित करती हुई नारी। नारी, जो आसपास के वातावरण के अमृत बिन्दुओंको सुखाकर उनकी जगह आग उगलती चलती है, नारी जिसकी आँखों में सूनेपन की आग है, जिसके दिल में अभाव का हाहाकार है, जिसकी लटों में काले सर्पों का फुफकार है, नारी जिसका अंत:स्रोत सूख गया है, वह अंतस्रोत, जिसके कारण उसकी महत्ता और मृदुता है।

आश्चर्य है कि अपने त्याग, संयम और स्नेह से नारी ने मानव सभ्यता तथा संस्कृति के उत्थान में जो गौरवपूर्ण पद प्राप्त किया था, उससे वह हटती जा रही है। अनादिकाल से वह मानव जाति में संस्कृति विकास का कार्य करती आयी है। उसके त्याग से पशुता पराजित हुई है और उसके प्रेम से मानस धन्य हुआ है, उसके दान, त्याग और तप से समाज बन सका है। जगत में प्रेम के दान से बढ़कर कुछ नहीं है।प्रेम की वृत्ति क्या अस्वाभाविक है?क्या हिंसा और शोषण से विकास हुआ है?सभ्यता संस्कृति उसी के सहारे पनपी खड़ी हुई है। आखिर किसने आदमी को भेड़िये से मनुष्य बनाया?किसने उसमें ममत्वका विस्तार किया?किसने उसमें श्रेष्ठता के संस्कार उत्पन्न किये?क्या बिना प्रेम दान के वह सब कुछ संभव होता, जो आजतक हो सका है?उस काल में जब पुरुष जंगली, स्वच्छंद, किसी की न सुननेवाला, अपने अहंकार में विस्मृत, बाधा–बंध–विहीन, अपने अस्त्रों पर भरोसा करनेवाला था, किस अधिकार से नारी ने उसे पालतू बना लिया?किस शक्ति से उसने उसे अनुरक्त किया?किसके कौशल से उसने उन झोपड़ियों का निर्माण किया, जिनमें विद्रोह और हिंसक मानव ने अपनी सभ्यता के शैशव में सुख की चंद घड़ियाँ बितायी होंगी?यह सब नारी ने किस बल से किया?किस अधिकार से किया?प्रेम की अमृतशक्ति से उसने हिंसक प्रवृतियों को पराजित कर मानव संतति को श्रेष्ठ संस्कृति की दीक्षा दी। वह देखने में निरीह थी, पर उसमें वास्तविक शक्ति का अधिष्ठान था, वह निरस्त्र थी, पर उसके चारों ओर एक ऐसा ज्योति–मंडल था, जिसके प्रकाश में शस्त्राभिमानी घुटने टेक देते थे। वह परम रिक्ता थी, पर उसका दान कभी समाप्त न होता था–दिन हो, रात हो, अंधकार हो,प्रकाश हो, दुर्दिन हो, सुदिन हो। उसकी स्नेहधारा बहती रहती थी। देखने में दीना, परंतु उस वैभव से मंडित जो संसार से परम वैभव के प्रलोभनों को तुच्छ समझकर ठुकरा सकती है। आज भी सभ्य नारी उसका उपहास करती है, जैसे छाया या मृत्यु जीवन का उपहास करे।

निस्संदेह हिन्दू स्त्री की अवस्था अन्य देशों या जातियों की स्त्रियों की तुलना में कहीं अच्छी है–समाज में, घर में उसका ज्यादा सम्मान है तथा उसके अधिकार स्थिर एवं सुरक्षित हैं। उसकी जो दुर्दशा दृष्टिगोचर होती है, उसका कारण अधिकांश में वह पाश्चात्य संस्कृति है, जिसने जीवन को स्वार्थी, भोगपरक और विलासी बना दिया है, दरिद्रता तथा असंतोष को बढ़ा दिया है और सामाजिक शान्ति और व्यवस्था को विशृंखलित कर दिया है। भारतवर्ष सदा से मातृवर्ग का सेवक रहा है। इसी से कार्य व्यवहार में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का सम्मान अधिक होता आया है। वाग्व्यवहार में भी पहले स्त्री का नाम आता है, पीछे पुरुष का। गुप्त वस्तुओं के भार से थका हुआ दाहिना हाथ बायें हाथ को गठरी देकर जिस शांति का अनुभव करता है, वह क्या किसी और से पा सकता है?पति पत्नी के अतिरिक्त परस्त्री और परपुरुष का मिलन दोषमय है। नारी घृत के घड़े के समान है और पुरुष जलती हुई आग के समान। एक में मृदुलता है, कोमलता है, चारुता है,मिठास है, तो दूसरे में कठोरता है, कर्मठता है, पौरुषता है। कामशास्त्र समुद्र की तो कर्णधार ही नारी है। समस्त विद्या और सब स्त्रियाँ देवी के ही रूप हैं, प्रकृतिरूपिणी है। सृष्टि क्रिया में प्रकृति का ही प्राधान्य है।

स्त्री–पुरुष में जिसका जो सहज,स्वाभाविक, नैसर्गिक गुण है, उसे कोई क्योंकर छीन सकता है?अग्नि का दाहकत्व, जल का शैत्य, नारी के मार्दव, सौष्ठव गुण का अपकर्षण किसी भी तरह नहीं हो सकता। लता–वृक्षों

को पकड़कर ही आगे बढ़ती है। नदियाँ समुद्र की राह छोड़ दें, तो वहीं सूख जाएँ। यदि कोई लतिका वृक्षों को छोड़ कहीं सिर ऊँचा कर देती है, तो उसका पतन उसी क्षण स्थिर हो जाता है। सौदामिनी मेघों को छोड़कर अन्यत्र नहीं जा सकती। स्त्रियों की विश्रान्ति भी पुरुषों के आधे अंगों के सिवाय दूसरी जगह नहीं हो सकती। जो जिस कार्य को आसानी से कर सके,वह कर डाले। इसमें समस्या कैसी?अधिकार वा हक के लिए तकरार कैसा?जो स्त्री केवलपति की ही सेवा स्थिरचित करती है, उसे कहीं भटकने की जरूरत नहीं है। स्त्रियाँ मक्खन से, मखमल से, रेशम से, चांदनी से और फूलों से भी बढ़कर कोमल है। उनका सबसे अच्छा रूप कौन है, कहना मुश्किल है, इसीलिए बुद्धिमानों ने उसे माया कहकर छोड़ दिया है।

स्त्री परमात्मा का मोहिनी रूप है। स्त्री शान्ति,शक्ति स्नेह, धैर्य, क्षमा, त्याग, सौंदर्य और माधुर्य का प्रतीक है। सूर्य उसी का तेज है, चन्द्रमा उसी की मुखछवि है, कुसुम उसी की मुस्कान है, कोकिल उसी की वाणी का परिचय देती है, सागर उसी के मन की गहराई है। नारी पूरी तरह केन्द्रित विचार करती है। वह अपनों के स्वार्थ को एक क्षण के लिए भी भूल नहीं पाती। वह दूर परिणाम के बदले अपनों को तात्कालिक लाभ अधिक देखती है, कल्पना में नहीं जीती। वास्तविकता को पकड़े रहती है, यथार्थदर्शिनी होती है, यथार्थ से आगे जाने में सदा हिचकती है, सदा शंका करती है और दूर के यथार्थ को भी कम ही सोचती है। वह वास्तविकता पर स्थित है। संग्रह और रक्षा तो नारी के कार्य हैं। नारी की उत्सर्गवृत्ति और पुरुष के उपभोगवृत्ति स्वाभाविक है, उसे रोका नहीं जा सकता। वह रागमयी केन्द्रित वृत्ति है। नारी जब उत्सर्गवृति छोड़ अर्जन प्रारंभ करती है, तो अपने जीवन को अशांत बना लेती है। एक तो त्यागकर जब अनेक में वह हृदय को विभक्त करेगी, तो वह अपने स्वभाव के प्रति विद्रोह करेगी। पुरुष जब संग्रह और संकीर्णता को अपनाता है, तो वह अपने जीवन को अशान्त बना लेता है। नारी ही पुरुष की कल्पना और आदर्श का स्वरूप देने में समर्थ होती है। स्त्रियाँ जब नौकरियों के पीछे पड़ती हैं, तो घर बिगड़ जाता है। नारी के बिना तो पुरुष केवल अपनी कल्पनाओं और आदर्शों में उलझा रहनेवाला ध्यानी (ख्याली) पुलाव पकानेवाला होगा।

स्त्री–पुरुष में जो स्वाभाविक अंतर है, वह एक को दूसरे पर आश्रित रखनेवाला है। नारी पुरुष का रूप सौंदर्य देखकर ही व्याकुल हो उठती है, द्रवित हो जाती है, पुरुष में भेद नहीं करती। नारी प्रेम का पावन संदेश देने के लिए अवतरित हुई है। भगवान सब जगह प्रकट नहीं हो सकते, इसीलिए उन्होंने स्त्री के रूप में माताओं की सृष्टि की। सच्चे प्रेम का आधार है स्वार्थ का पूर्णतया त्याग। प्रेम अंधा होता है, जो प्रणय की अपेक्षा मातृ स्नेह के विषय में यह उक्ति अधिक ठीक है। उसका प्रेम उसके लिए सत्य के ऊपर पर्दा डाल देता है। गंभीर और तीव्र होते हुए भी माता अपने प्रेम की डुग्गी नहीं पीटती, प्रेम और विवेक एक साथ में नहीं रह सकते माँ के लिए।

फैशन तो आज बाहर दीप संजोने का है। जगमग करती दीपमालाएँ मन को मुग्ध किये लेती हैं। रोशनी से आँखें चकाचौंध हैं, पर अंतर सूना। चारो ओर से तेज हवाएँ आ रही हैं और उसके बीच हमें दीये की रक्षा का कोई उत्साह नहीं रह गया है। प्रकृति यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति (गीता 3/23) प्रकृति पर जीत साधारण काम नहीं है, सबके वश की बात नहीं, इसीलिए खूब सोच समझकर आगे बढ़ना होता है। दूध और घी अमृत हैं, परंतु जितना पच सके, उतना ही सेवन किया जाना चाहिए, अन्यथा विष भी बन सकता है। उत्तम वस्तु भी कुपात्र में विष बन जाती है। द्विलिंगात्मक सृष्टि मनमानी स्वच्छंदता या स्वकल्पित महत्ता की स्थापना के लिए नहीं, विस्तार के लिए हुई है। काम–वासना की चिकित्सा के लिए विवाह श्रेष्ठ है, परन्तु बहुत कड़वी दवा है, बहुत संभलकर उसका व्यवहार न किया जाए, तो बड़ी भयावह भी है। विवाहित स्त्री–पुरुष को भी सदा मिलन की सुविधा नहीं दी गयी है। पर्व, व्रत, अमावस्या, व्यतीपता बहुत–से विधि निषेध हैं, जो भोगेच्छा नियमित करते हैं। मनु ने संतानोत्पत्ति, धर्म– कर्म, सेवा, उत्तम प्रेम, पितरों का उद्धार तथा अपना उद्धार भी स्त्री के ही अधीन बताया है। 'अपत्यं धर्मकार्याणि सुश्रूषा रतिरुत्तमा। दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्र्च ह।।' स्त्री की सतीत्व की रक्षा करनेवाला पुरुष अपनी संतान की, अपने सदाचार की, कुल की, अपनी तथा अपने धर्म की रक्षा कर लेता है। 'सवां प्रसूति चरित्र च कुलमात्मानमेव च। स्वं च धर्म प्रयत्नेन जजायां रक्षन् हि रक्षति।' स्त्री रक्षा उसको परतंत्र बनाने की भावना नहीं, उसके पद का महान गौरव है। जैसे देवी की रक्षा में पार्षद रहते हैं, रानी की रक्षा सैनिक करते हैं–स्त्री मात्र के प्रहरी पुरुष हैं। इससे स्त्री किसी भी प्रकार के व्यभिचार और परपुरुष चिंतन से बची रहेगी। इस रक्षा पर ही लोक–परलोक सबकी रक्षा सुस्थिर है।

ब्रह्मवैवर्तपुराण में नारद कहते हैं, स्त्रियाँ तीन प्रकार की होती हैं–साध्वी, भोग्या और कुलटा। इनमें कुलटा में कपट होती है, भक्ति नहीं और इन्हीं के लिए कहा गया है कि इनमें काम पुरुष से आठ गुना, आहार दो गुना, निष्ठुरता चार गुना और क्रोध छः गुना अधिक होता है। ऐसी पुंश्चली नारी स्वार्थ के लिए पति एक को मार डालने से नहीं हिचकती। ऐसी ही स्त्री के हृदय को भेड़िये के समान अविश्वसनीय कहा गया है। स्त्री मधुरूपा है, विधाता का द्वितीय मुख जिसके संयोग से एक अद्‌भुत ऐन्द्रियसुख मानसिक तृप्ति तथा संतति के द्वारा अपने पूर्ण विकास और स्वरूप लब्धि की निश्चित संभावना सन्निहित है। पश्चिम की स्त्री पतिपरायणा नहीं, पतिपरांगमुखी होने की कला में पारंगत होती है। गर्भधारण करके बच्चा जनना स्त्रियों का प्रकृतिसिद्ध कार्य है। नारी दुर्बल अंश है, उसका नारीत्व, स्त्रीत्व और सब अंश है–उसका पत्नीत्व और पातिव्रत। किन्तु आज के खुले वातावरण में स्त्री की पवित्रता से संबंधित कल्पना का अब ह्रास होता चला रहा है।

ऐश्वर्य, धन और वैभव से जगमगाते नगर हैं आज, धनपतियों के प्रयत्नों से निकलनेवाले कारखानों की चिमनियों का धुआँ आकाश से भर गया है, प्रेस और पत्र दिन–दिन बढ़ रहे हैं। बाल की खाल निकालनेवाली शिक्षा भी हमें मिल रही है, समाज शरीर में सर्वत्र आंदोलन है, हरकत है, परन्तु जीवन का देवता अपने कपाट बंद किये ऐसा सोया है कि हमारी आर्तवाणी उस तक नहीं पहुँच पाती। क्यों ऐसा है?इसलिए कि गृह, जो समाज के मूलघटक थे, आज बिखर रहे हैं। दीवारें हैं, कमरे हैं, बिजलियाँ हैं, पर गृह के प्राण, गृह की लक्ष्मी का पता नहीं है। उसके अभाव में सब कुछ निष्प्राण है। गृहलक्ष्मी का लोप होता जा रहा है, इसलिए गृह का लोप भी हो रहा है। परिवार और समाज की नींव खिसक रही है और हम ऊपर से टेक और चोट दे रहे हैं। वे गृहलक्ष्मियाँ और अन्नपूर्णाएँ आज कहाँ हैं, जिनके दान का आश्वासन अभाव की घड़ियों में हमें जीने और कठिनाई की चट्टानों का तोड़ने का बल प्रदान करता था?हृदय में मधुर गंध, देह में मातृत्व का गौरव भरे, गृह के अणु–अणु में व्याप्त दीवारें जिसके हास्य से चमकती हों, द्वार जिसके हाथ से आतिथ्य के सत्कार की घोषणा करते हों, तुलसी का चौरा जिसके अंचलदीप से आलोकित हो और पति का प्रकोष्ठ जिसके स्नेहराग से रंजित हो, घर के अणु–अणु में समायी हुई मिट्टी और पत्थर को सजीव करनेवाली वह गृहलक्ष्मी आज कहाँ है?

ऐसा प्रायः देखने में आ रहा है कि जहाँ नारी का सम्मान नहीं होता, उसका अपमान किया जाता है, वांछित प्रेम–सत्कार, सम्मान से वंचित रखा जाता है, वहाँ हमेशा ही अनेकानेक प्रकार की समस्याएँ होने लगती हैं। यह एक दंड है, उनके लिए जो नारी को सम्मान नहीं देते, व्यर्थ प्रताड़ित करते हैं। यह समस्त परिवारों, पुरुषों के लिए संकट है, चेतावनी है कि नारी का सम्मान करें, तभी सुख–समृद्धि एवं सौभाग्य आपको प्राप्त हो पाएगा, अन्यथा गृह से विलुप्त हो जाएगी गृहलक्ष्मी।

आलेख

# तुलसी काव्य में समय और समाज

डॉ. अमर सिंह बधान
निदेशक, उच्चतर शिक्षा संस्थान एवं शोध केन्द
चंडीगढ़, मो. 9876301085

अपने जन्म के साथ दारुण–दुर्भाग्य कथा लेकर अवतरित होनेवाला, पत्नी प्रेम के वशीभूत होकर अँधेरी रात में बाढ़ पर आई नदी को लाश के सहारे पार करनेवाला, सर्प को ही रस्सी समझकर पत्नी के मायके में प्रवेश करनेवाला विलक्षण युवक राम भक्ति, समन्वय एवं मानव कल्याण की एक विराट परंपरा को स्थापित करेगा,शायद इसकी किसी ने कल्पना नहीं की होगी। कालान्तर में यही प्रज्ञा युवक अपने बौद्धिक विकास एवं उदात्तीकरण से 'रामचरितमानस', 'विनयपत्रिका' और 'कवितावली' जैसी कालजयी कृतियों का सृजन कर गोस्वामी तुलसीदास के नाम से विश्वविख्यात हुआ। समय के साथ–साथ साहित्य पारखियों, काव्य मनीषियों एवं मूल्यांकनकर्ताओं ने तुलसी की काव्यप्रतिभा को पहचाना, उनके कवि, भक्त, आराधक, सुधारक, भविष्यद्रष्टा, विश्वास एवं प्रेम की गहराई में उतरकर खोज की। इस असाधारण प्रतिभा के धनी ने जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में विष को अमृत में किस तरह बदलने के प्रयास किए, इसका भी समीक्षकों ने अनुसंधान किया। इसी तुलसी की महानता पर मुग्ध होकर प्रसिद्ध इतिहासकार वी.ए.स्मिथ ने अपने ग्रंथ 'अकबर द ग्रेट मुगल' में लिखा है कि तुलसीदास अपने युग में भारतवर्ष के सबसे महान व्यक्ति थे। अकबर से भी बढ़कर इस बात में सच्चाई थी कि करोड़ों नर–नारियों के हृदय पर प्राप्त की हुई कवि की विजय, सम्राट की एक या समस्त विजयों की अपेक्षा असंख्यगुणी, अधिक चिरस्थायी और महत्वपूर्ण थी।

तुलसीदास के काव्य साहित्य की राह से गुजरने पर ज्ञात होता है कि उनके काव्य में अपने समय का यथार्थ एवं भक्तिभाव सर्वाधिक मुखरित है। उनकी भक्ति में आत्मकल्याण के साथ लोककल्याण भी सन्निहित है। वे सरल चित और जगत हितकारी भक्त हैं। सांसारिक आकर्षणों और शासकों की प्रशंसा की ओर से वे कभी नहीं झुके। उन्होंने तो मुस्लिमधर्म तथा अन्य भ्रष्ट समुदायों से संत्रस्त हिन्दू जनता को राम भक्ति का आश्रय दिया। उनके युग में तंत्र–मंत्र, आडम्बर और व्यभिचारों ने धर्म का वास्तविक रूप लुप्तकर दिया था।ऐसे में उन्होंने हिन्दू धर्म को प्राण देने के लिए उदारतावादी और सुधारवादी धार्मिक दृष्टिकोण अपनाया। उन्होंने योगियों, सिद्धों, वाममार्गियों के व्यभिचार, जैन श्रावकों तथा वेद–पुराणों के निंदक निर्गुण संतों पर कटु प्रहार किये। तुलसी ने वैष्णव धर्म को इतना व्यापक और विराट रूप प्रदान किया कि वह लोकधर्म ही बन गया। 'रामचरितमानस' लिखते समय उनके समक्ष विविध सामाजिक मूल्यों और नैतिक मान्यताओं का प्रश्न था। इसीलिए उन्होंने पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन एवं सामाजिक संगठन के लिए विविध आचार– व्यवहारों की कल्पना 'रामराज्य' के माध्यम से की।

इसमें मतैक्य है कि तुलसी समाज संबंधी दृष्टिकोण लोकमंगल की भव्य नींव पर टिका हुआ स्तंभ है, जहाँ परहित के समान कोई दूसरा धर्म नहीं और दूसरों को पीड़ा पहुँचाने के समान कोई नीचता नहीं। तुलसी यह भी भलीभाँति समझते थे कि समाज में सुव्यवस्था लाने के लिए मर्यादित आचरण आवश्यक है। यही कारण है कि उनके काव्य के सभी पात्र सामाजिक मर्यादाओं में बँधे हुए हैं। उन्होंने समाज को त्याग, बलिदान एवं आत्मोत्सर्ग का मार्ग सुझाया। समाज में प्रचलित मान्यताओं और परंपराओं को समय की परिस्थितियों के अनुकूल ढालकर उन्हेंएक नया रूप प्रदान किया। साधारण–असाधारण की संज्ञाओं से ऊपर उठकरउन्होंने समाज में आमूल–चूल परिवर्तन करने का जो स्वप्न देखा, वह भारतीय इतिहास और मानवीय चेतना के इतिहास का एक ऐसा पक्ष है, जिसकी अद्भुतता आधुनिक युग में प्रचलित समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानि निष्कर्षों की तुला पर भी तोलना संभव नहीं है।

तुलसीकृत 'रामचरितमानस' हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है, जिसमें मर्यादा पुरुषोत्तम राम के व्यक्तित्व में नर और नारायण के समन्वित रूप के दर्शन होते हैं। यह मानव जीवन का महाकाव्य है, जिसके माध्यम से महाकवि तुलसी ने मनुष्य की आध्यात्मिक और भौतिक समस्याओं को सुलझाने का अद्भुत प्रयास किया है। इसमें वर्णित चारित्रिक महानताएँ, जीवन–विषयक विषम समस्याएँ, सांस्कृतिक उद्घाटन, गंभीर व मार्मिक भाव–प्रवाह और भक्ति भावना इस ग्रंथ को अनूठा काव्यरत्न सिद्ध करने में पर्याप्त हैं। लोकोत्तर आनंद देने के लिए यह अद्वितीय काव्यग्रंथ है, परम शान्ति देने के लिए यह विलक्षण धर्मग्रंथ है और समाज संस्कार के लिए यह अद्भुत नीति ग्रंथ है। तुलसी ने इस महान ग्रंथ में ईश्वर को तर्क का विषय न मानकर अनुभव और विश्वास का विषय माना है। उनकी मान्यता है कि मनुष्य अपने विश्वास और आस्था के बल पर ईश्वर को सगुण और साकार रूप में अनुभव कर सकता है। तुलसी के मानस के अनुसार मनुष्य जीवन का प्रमुख ध्येय भगवान का साक्षात्कार करना है, जिसका सुगम उपाय भक्ति ही है। वैयक्तिक हित, पारिवारिक सामंजस्य, समाज संस्कार, राज्य परिष्कार तथा अध्यात्मोन्नयन के दृष्टिकोण से यह एक अनुपम रचना बन पड़ी है। इसमें भक्ति रस एक प्रपात की मानिंद प्रवाहित होता है।

'विनयपत्रिका' कवि द्वारा समय–समय पर लिखित विनय पदों का अनूठा संग्रह है, जिसमें राम के दरबार में कवि अपनी विनय को प्रदर्शित करता है। पत्रिका के आरंभ में अनेक देवी–देवताओं की स्तुति का उपक्रम है और अंत में भरत, लक्ष्मण और सीता के द्वारा भगवान श्रीराम को पत्रिका विषयक स्मरण कराने की कल्पना से इसमें प्रबंध काव्यत्व लाने की चेष्टा की गई है। इसमें भक्तिरस की निर्मल धारा कवि की मानसिक विकृतियों का उन्मूलन करती हुई, उसे भक्ति रसामृत से आप्लावित कर देती है। 'रामचरितमानस' यदि ज्ञान का रत्नाकर है, तो विनयपत्रिका एक अनुपम भाव–भक्ति का खजाना है। आश्चर्य नहीं है कि संस्कृत साहित्य में जो स्थान 'श्रीमद्भगवत गीता' को प्राप्त है, वही स्थान हिन्दी साहित्य में विनयपत्रिका को प्राप्त है। ये पद कवि के अनेक जीवनानुभवों के अनन्तर प्रौढ़ावस्था में सांसारिक तथा आध्यात्मिक अनुभूतियों की यथार्थता का सार निकालने के बाद ही रचे गये हैं। निस्संदेह धार्मिक तथा आध्यात्मिक कोण से ये सर्वोत्कृष्ट पद हैं।

श्रीराम की बाल–लीला, विवाह तथा वनगमन के अत्यन्त मनोरम प्रसंगों को तुलसी ने अपनी 'कवितावली' में प्रस्तुत किया है। यह एक ऐसी प्रतिनिधि रचना है, जिसमें बालमनोविज्ञान अपनी उच्च सीमा पर है। कवि कोटि–कोटि अभावग्रस्त, दरिद्र और अभागे लोगों को राम जैसे बालक का सुख प्रदान करते हैं। इस तरह यहाँ लोकमन और समाज के चेतन–अवचेतन मन के सपने साकारित होते हैं। तुलसी सामूहिक मानस के सूक्ष्म जानकार भी हैं। तभी तो वगगमन प्रसंग में ग्राम कन्याओं के सरल, सहज अनकहे प्रश्न और सीता के अनकहे व अबोल उत्तर परम विशिष्ट एवं सामान्य जन के बीच आत्मीयता का संवाद बन जाते हैं। इस रचना में तुलसी के निजी जीवन से संबंधित घटनाओं का प्रामाणिक वर्ण भी मिलता है। कवि का अभागा बचपन, रोगग्रस्तता, उनके जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभानेवाले नगरों, अन्य स्थानों आदि का वर्णन एवं स्तुतियाँ भी इस काव्य में प्राप्त होती हैं। उन्होंने युग

एवं समाज की विषम परिस्थितियों का भी मार्मिक एवं प्रामाणिक चित्रण किया है।

तुलसीकृत रचनाओं में तत्कालीन समाज एवं समय की सच्ची तस्वीर मिलती है। उनकी 'रामचरितमानस' में कलियुग का वर्णन है तो 'कवितावली' में उस समय की कुव्यवस्था के यथार्थ चित्र हैं। कवि ने समाज में व्याप्त अनाचार, मर्यादाविहीनता, अमानवीयता, अत्याचार एवं अन्याय का खुलकर चित्रण किया है। उनकी 'रामराज्य' परिकल्पना कवि की सामाजिक मान्यताओं का सबसे बड़ा आदर्श है। इसीलिए 'रामचरितमानस' को सामाजिक आदर्शों और मर्यादाओं की स्थापना का महाकाव्य कहा गया है। श्रीराम के अवतार का प्रमुख लक्ष्य भी तो यही था। तुलसी की 'कवितावली' एक तरह से आत्मकथ्य के समान है। वे किसी समस्या को एक बृहत्तर परिप्रेक्ष्य में देखने–परखने के पक्षधर हैं। कवि के दृष्टिकोण में भक्तिभाव प्रधान रूप से होते हुए भी उनकी भावना सामाजिक है। देश और समाज की रीति, नीति और संस्कृति का जो रूप उन्होंने हमारे सामने रखा है, उससे उनके सामाजिक और राजनीतिक आदर्श स्पष्ट होते हैं। वे मनुष्य के सामाजिक स्नेह–भाव के मार्ग में तीन प्रकार की एषणाओं का बाधक मानते हैं। वे हैं—सुत, वित और लोक संबंधी एषणाएँ। उनका दृढ़ विश्वास है कि इन एषणाओं से मुक्त होकर ही व्यक्ति सामाजिक हित कर सकता है और ममत्व का भाव विकसित कर सकता है। जाहिर है कि तुलसी का दृष्टिकोण आर्थिक गुलामी से हमें मुक्ति प्रदान करता है।

कवि तुलसी के समय में ज्ञान और कर्मकांड की रूढ़ियाँ प्रबल थीं। उन्होंने इन सामाजिक रुढ़ियों का खंडन करके एक उदार दृष्टिकोण का विकास किया है और व्यर्थ के भेदभाव को दूर किया। तुलसी ने न केवल जीवन की पूर्ण कल्पना की, बल्कि जिस जीवन कल्पना को महाकवि वाल्मीकि ने प्रस्तुत किया था, उसका परिष्कार करके और उसे समाज के अनुरूप बनाकर उन्होंने राम के चरित्र के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किया। बाल्यकाल से लेकर राज्याभिषेक तक जितनी विविध परिस्थितियों में राम का जीवन विकसित हुआ, वे जीवन की विविधरूपता एवं हृदय को मंथन कर देनेवाली गंभीरता उपस्थित करती हैं।

उल्लेखनीय है कि मध्यकालीन परिवेश में रहते हुए भी तुलसी की दृष्टि कई मायनों में आधुनिक एवं प्रगतिशील है। वह एक ऐसा समय था, जब चारो ओर पांडित्य प्रदर्शन का बोलवाला था और संस्कृत में काव्य रचना प्रतिष्ठा का प्रतीक था। जन सामान्य की भाषा में कविता करना हेय दृष्टि से देखा जाता था, लेकिन तुलसी एक नितांत निजी एवं अनूठे मार्ग पर चले। उन्होंने अपने काव्य के उद्देश्य की स्पष्ट घोषणा करते हुए राम के चरित्र को अपने काव्य का विषय बनाया तथा जनता की भाषा 'अवधी' में काव्य रचना की। युग के दिग्गज पंडितों के विरोध के बावजूद उन्होंने लोकभाषा में ही काव्य सृजन किया। उन्होंने न केवल एक ग्राम्य बोली 'अवधी' का उद्धार किया, अपितु अरबी–फारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करके भाषा विषयक अपनी प्रगतिशीलता एवं उदारता का परिचय भी दिया। इसमें कोई शक नहीं कि काव्य के स्पष्ट लक्ष्य एवं लोकभाषा के माध्यम के कारण ही भारतवर्ष के घर–घर में रामचरितमानस को पढ़ा और सूना जाता है। यहाँ तक कि इस ग्रंथ की ओर विदेशी विद्वान् और पाठक भी आकृष्ट हुए हैं। विश्व की कई भाषाओं में रामचरितमानस के संपन्न हुए अनुवाद इसकी लोकप्रियता के जीवन्त प्रमाण हैं। दरअसल तुलसी काव्य सार्वजनीन और सार्वभौतिक है तथा लोक कल्याण व विश्व कल्याण करने में समर्थ है।

तुलसी काव्य इस बात का भी प्रमाण है कि उन्हें मानव मन की अद्‌भुत पहचान थी। जनक वाटिका में सीता–राम दर्शन प्रसंग में, राम वनगमन प्रसंग में, भरत मिलाप प्रसंग में, शबरी के बेर प्रसंग में और राम विलाप प्रसंग में तुलसी की सहृदयता व संवेदनशीलता मनोवैज्ञानिक उत्कर्ष पर है। आश्चर्य होता है कि इतना उदार एवं उदात्त कल्याण भावना रखनेवाले इस महान कवि को कुछ कच्ची समझवाले लोग संकीर्ण एवं साम्प्रदायिक घोषित करते हैं, जबकि तुलसी समस्त संसार के सारे प्राणियों की कल्याण कामना से प्रेरित एक सच्चे व्यक्ति थे। प्राणी मात्र का कल्याण उनका आदर्श था। उन्होंने अपने काव्य भक्ति को 'शील' के साथ जोड़ा और शील की कोई जाति अथवा धर्म नहीं होता। शील तो समूची मनुष्य जाति का आदर्श धर्म है। यही वजह है कि उनके राम शील के साक्षात् अवतार हैं। तुलसी की भक्ति आत्म कल्याण और लोक कल्याण संपूर्ण मानव जाति के लिए है।

ऐसा नहीं है कि भारत अब पुण्यभूमि बन गया है और तुलसी जैसे महाकवियों की आज प्रांगिकता एवं महत्ता नहीं रही है। भारतीय समाज और जनता राज आज भी असमानता, शोषण, अत्याचार, अन्याय, आतंक, भय, राजनीतिक भ्रष्टाचार, रुग्ण व्यवस्था तथा अवसरवादिता का शिकार है। मानव मूल्य अपाहिज स्थिति में हैं तो संतप्त और संत्रस्त्र मानवता की पीड़ा का अहसास मात्र इतिहास संदर्भ बनकर रह गया है। आज राजनीति ही सर्वोपरि है। धर्म, आचरण, शिष्टाचार, मूल्य, नारीत्व आदि हासिए पर धकेल दिये गये हैं। ऐसे बदरंगे सामाजिक एवं राजनीतिक माहौल में जन कल्याण, शील, समन्वय, समदर्शिता, स्वस्थ–स्वच्छ शासण, करुणा, सुरक्षा, मानव प्रेम आदि की सीख तो हम तुलसीदास से ले ही सकते हैं।

## मधुमास रात आई है (गीत)

–शशिकला झा, वीरपुर सुपौल,
मो. 9471658607

सनन सनन पूरबा बन नाच रहा मोर है
कुहके कोयलिया चित्कारे चकोर है
मौसम में आज कुछ, बात नई छाई है
लगता है गुपचुप, मधुमास रात आई है
चंदा उनिंदा है, व्याकुल परिवेश है
हवा सुस्त चालों में, कामना प्रवेश है
प्रिया नयन चुपके से,राग रति छाई है
लगता है गुपचुप, मधुमास रात आई है
महुआ पट खोल रहा, बंद पड़े कलियों के
मंजर अंगड़ाई ले, झूल रहा डलियों पे
बेला की खुशबू, मदमस्त हवा लाई है
लगता है गुपचुप, मधुमास रात आई है
भँवरे का गुनगुन, तन पुलक रहा पुष्पों का
है पराग राह तके, आज मधु रस्मों का
फिर से बन प्रेयसी, लो कलियाँ शरमाई है
लगता है गुपचुप, मधुमास रात आई है
अब बसंत चन्द्रमा, मचल रहा है अंबर में
आज रति आएगी, काम वरण स्वयंवर में
प्रकृति सुहागन हो, फिर से मुस्काई है
लगता है गुपचुप, मधुमास रात आई है।

कविता

–अलका अग्रवाल,
ऐसोसिएट प्रोफेसर चन्दौसी

## जीवन क्रम में

जीवन क्रम में आया
फिर एक वर्ष नया
हर ओर आह्लाद, उन्माद
गति और प्रगति की छाया
गाओ मंगलगीत संगीत सजा
मनोहारी आयोजन आवाहन
नव सूर्य अभिनंदन वंदन
नवागत वर्ष सुस्वागतम्
जीवन के इस रंगमंच पर
फिर खेलो एक नाटक नया
पात्र वही बदल गया है समां
कहानी नयी, बदलो अंदाजे बयां।
भूल गाथाएँ बिसरी बातों की
जलाओ विश्वास की दीप नया
नव संकल्प की उमंगों से
रचो आशाओं का इतिहास नया
जीवन कर्मरथ जोड़ो चक्र नया
गति निरंतर विस्तार अनंत
लिखो नवतूलिका से अध्याय नया
जीवनपृष्ठ नया, वर्ष नया

पुस्तक समीक्षा

# लौट आये हैं गीतों के दिन

शिवदयाल

'नयी कोपलों की खातिर' भगवती प्रसाद द्विवेदी का पहला काव्य–संग्रह जरूर है,लेकिन वे बहुत पहले से ही स्थापित और प्रतिष्ठित कवि और गीतकार हैं। उन्होंने साहित्य की लगभग सभी विधाओं में प्रचुर लेखन किया है और भोजपुरी साहित्य के तो वे अत्यन्त महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। भगवतीजी बच्चों के लिए भी अनवरत लिखते रहे हैं, हिन्दी बालसाहित्य में उनका विपुल योगदान है। यों तो वे स्वयं को मूलत: कथाकार मानते हैं, लेकिन उनकी कविताओं और गीतों से गुजरकर पाठक उन्हें सहज ही मूल रूप से कवि स्वीकार कर लेंगे।

वास्तव में समीक्ष्य पुस्तक भगवतीजी के गीतों एवं दोहों का संकलन है। इसमें एक भी रचना छंदमुक्त नहीं है। गीत–नवगीत आज हिन्दी कविता की मुख्यधारा नहीं है, उल्टे हाशिए पर है। यह मान लिया गया है कि आज का जटिल और संश्लिष्ट यथार्थ छंदानुशासन में व्यक्त नहीं हो सकता अर्थात् कोई गहरी बात मुक्त छंद में ही कही जा सकती है। चाहे वह गूढ़ जीवन दर्शन हो, व्यवस्था की जकड़न हो या इनसे मुक्ति की छटपटाहट, सामाजिक संबंधों की जटिलता हो या राजनीति की पैंतरेबाजी, छीजते मानवीय मूल्य हों या अकेले पड़ते व्यक्ति का त्रास–छंद अभिव्यक्ति में बाधा है। गलत! 'क्यों कोंपलों की खातिर' का कवि इस धारणा को ध्वस्त कर देता है। अपने समय का शायद ही ऐसा कोई ज्वलंत प्रश्न हो, कवि जिससे नहीं टकराता। छंद उसके लिए रुकावट नहीं बनते, उसकी वाणी में ओज भरते हैं, उसके आशय को और गहन बनाते हैं और पाठक को संवेदित करते हैं। भगवती प्रसाद द्विवेदी ने इस अकेले संग्रह से यह सिद्ध कर दिया है कि गीत–नवगीत आज भी काव्याभिव्यक्ति का समर्थ माध्यम है–इसमें सब कुछ कही जा सकती है। गीतों की असली ताकत रोमानियत है। हमारे यहाँ विचित्र बात हुई है कि रोमानियत को प्राय: यथार्थवाद के विलोम के रूप में देखा–पहचाना गया है, बल्कि उसे कवि की कमजोरी भी माना गया है। यथार्थ में रोमानियत निजी अनुभूतियों के चौखटे में बंद होकर रहनेवाला भाव नहीं है, यह मनुष्य के सकर्मक चित्त का नियंता भी है और उसकी अभिव्यक्ति भी। इसके अभाव में न तो श्रेष्ठ कवि बना जा सकता है, न क्रांतिकारक या सुधारक। इस संग्रह की रचनाओं में रोमान जगह–जगह छलक पड़ता है, चाहे वह अंतरंग प्रसंग हो या व्यवस्था को बदलने की अकुलाहट। दो बन्द देखिए–'कजरारे/नयनों के द्वारे/ठहर गई हैं सुधियाँ सारी/धवल चाँदनी/ में सिमटी है/ मौलसिरी–सी लाज कुँआरी....' (तुलसी चौबारे पर), और 'कुहुकना है/ प्रतिबंधित/ सन्नाटा जारी/गदराए/टेसू पर/ चल रही कुल्हाड़ी/राजा के/ महल में बहार/कैक्टस से स्वस्ति सिरजते।' (कुहुकना है प्रतिबंधित)।

गीतकार की जड़ गाँव में है, वह खाँटी ग्राम्य संवेदना का कवि है। ग्राम्य जीवन की सहजता, प्रकृति से निकटता और संबंधों में मिठास से उसका व्यक्तित्व पगा–बना है। शहर की कृत्रिमता और आपाधापी के साथ ही दिनोंदिन छीजती जाती मानवीय संवेदना से वह व्यथित है। दूसरी ओर, गाँव अब वह नहीं रहा, वहाँ सब कुछ बदल गया है। उसके सपनों की दुनिया उसके अतीत से जुड़ती है और उसकी तलाश दरअसल यहाँ से शुरू होती है–'कहाँ हैं वे लोग/वे बातें/उजालों से भरी?/'पंच परमेश्वर' के/ जुम्मन शेख/अलगू चौधरी/खून के प्यासे हुए/इंसाफ करते हिटलरी/...' गाँव के कायांतरण का जायजा भगवतीजी ने बदलते भूमि संबंधों' और भौतिकवादी मूल्यों के प्रसार के माध्यम से लिया है। उनका प्रेक्षण, सूक्ष्म, अनुभवजन्य एवं प्रामाणिक है। इंदिरा आवास और मनरेगा कार्यक्रम तक उसकी जद में है (कौड़ी का तीन) – 'गाँव–शहर में/ है कौड़ी का/तीन हुआ होरी/ अबरा की जोरू/धनिया है/सबकी भौजाई/....जर–जमीन/हड़पी दबंग ने/ करे बरजोरी/ बँचवाई/मतदाता पोथी/नाम नदारद है/नहीं इंदिरा घर/ना ही/मनरेगा कारड है.....' ग्राम्य परिवेश का ऐसा यथार्थ विवरण दुर्लभ है। वह भी गीत विधा में बिहार और उत्तरप्रदेश के पलायित प्रवासियों के परिवारों की पीड़ा का उजागर हुई है, इन पंक्तियों में –'मुनुआ की/ माई लिखवाती/ मुनुआ के बापू को पाती/ टप–टप/ नासूर–सी/ टपक रही/ टपक रही मड़ैया/ ठिठुर रही/ खोंते में/ भीगी गौरैया/ नयन हुए/ बदरा बरसाती/ जिनगी की नाव डगमगाती/ लिख दो/ नन्हका मुनुआ/ कर रहा मजूरी/ भूख के/ मदरसे में/ पढ़ता मजबूरी/ पेट की अग्नि/ बस धुंधुआती/ रोजी रोटी दियना–बाती'...।

'नयी कोंपलों की खातिर' का गीतकार इस अर्थ में असाधारण उद्यम प्रदर्शित करता है कि इस विधा में उसने विनिवेश और विदेशी पूँजी निवेश संबंधी आर्थिक नीतियों पर भी टिप्पणी की है–'विनिवेशक श्रीमान/ हमारे घर आएँ!/ आ पहुँचें अमरीका से/ ग्लोबल तौर–तरीका से/ पग–पग तोरण–द्वार सजाएँ/ स्वागत करें सलीका से!/दुनिया के दीवान/ हमारे घर आएँ!' (स्वागत गान), 'आज/ उदारीकरण/उधारीकरण हो गया।/ खाओ–पीयो/ मौज करो/ कुछ भी मत सोचो। बनो काठ–पत्थर/बेबस के/ अश्रु न पोंछो/कैसी/ बेदिल दुनिया का/ अवतरण हो गया!' (उदारी करण)। अर्थव्यवस्था की बदलती प्राथमिकताओं का जन–जीवन पर व्यापक असर पड़ा है। हमारे देश में भूमंडलीकरण की आर्थिक नीति से बाजारवादी विकास की अंधी दौड़ चल रही है। गरीब अपनी ही जमीन से बेदखल और जलावतन हो रहे हैं, जबकि अमीरों की अमीरी बढ़ती जा रही है। जनता के संसाधनों पर विकास के ठेकेदारों का कब्जा बढ़ता ही जा रहा है। यह तथाकथित विकास हमें अपनी परंपराओं और मूल्यबोध से काटता जा रहा है। मनुष्यता मानो बाजार की दया पर जीवित रहने को छोड़े जा रही है। कवि इस स्थिति को चुनौती देता है–'चलो जहाँ/ जन–जन के मन में/ लहराती हो एक नदी/बाट जोहते/ परदेशी की/ जहाँ उचरते काग कभी/ यह कैसा विस्तार/ कि जिसमें / रोज ब रोज सिकुड़ना है।'

घर–परिवार और गाँव–समाज पर हावी होते बाजारवाद पर से पंक्तियाँ ध्यान खींचती हैं–'भूमंडल में गायब घर/ अपनी पहचान मिट गई/ ... घूर रही शकभरी नजर/ अपनों से बेगाना पन। घर में बाजार है घुसा/ मतलबी हुआ अपनापन/ ...क्या उदार वक्त का असर/ आँखों की हवा हट गई' (घर में बाजार) 'दुनिया अब बाजार है। हर घर में बाजार/ हो निर्बंध करें सभी/ रिश्तों का व्यापार' (फीलगुडी दोहे)।

संग्रह में छीजते पर्यावरण पर भी सार्थक रचनाएँ दिखाई देती हैं, जैसे–'यहाँ कहाँ सौंदर्य बोध', 'फूल बचाना जी' तथा 'फलीगुडी दोहे'। साम्प्रदायिकता हमारे समय की एक विषम समस्या है, जिससे पार पाने की कोशिशें हमेशा कम पड़ती ही दिखाई देती हैं। मारक व्यंग्य में रची गई ये पंक्तियाँ देखिए–'कर में कट्टा, मुख में राम/ जै श्रीराम जै श्रीराम!/ कर जनता की नींद हराम/ जै श्रीराम जै श्रीराम/...(धिक्कार गान)। इस स्थिति में आम आदमी का हालचाल कैसा है, इसका जायजा कवि इस प्रकार लेता है–'जीवन–नैया 'लीक' है। हालचाल बस ठीक है/ नदी–नाव संयोग है/ राजनीति का रोग है। मंदिर–मस्जिद धुआँ धुआँ/ लहू–लहू सब लोग हैं/

दहशतजदा प्रतीक हैं।/' गली–गली में दंगा है/ राजा कितना नंगा है/ खच–खच गाजर–मूल–सा/ काट रहनुमा चंगा है/ रक्तपान की पीक है...'।

भगवतीजी जनविरोधी राजनीति पर ही मुखर नहीं होते (एक छुअन, कब विहँसेंगे फूल), उनकी पैनी नजर व्यवस्था की अंदरूनी परतों को भी भेदती है। 'साहब जी' और 'संजैया' जैसी रचनाएँ नौकरशाही को लक्षित हैं, जो संग्रह को अलग से विविधता प्रदान करती हैं। देशी 'गोरों' की ठाट–बाट और क्रूर असहजता पर ये पंक्तियाँ सटीक बैठती हैं–'उनके आने से/ आँखों में/ चुभता सन्नाटा/ बोलें तो/ लगता जैसे/ कुत्ते ने हो काटा/ नैनन/ तीर–कमान चढ़ाए/ आए साहब जी!' कहीं इसी नौकरशाही व्यवस्था के सबसे निचले पायदान पर संजैया (संजय, चपरासी) है, जो वास्तव में 'हाथ–गोड!/ हाकिम का है/ ऑफिस में संजैया...घंटी सुनकर/ कदमताल/ करता ता–ता–थैया।'

संग्रह में एक गीत बापू पर और एक लोकनायक जयप्रकाश नारायण पर भी है, जो जेपी आंदोलन और आपातकाल के दौरे में लिखा गया है–'लगा हुआ हो/ मुँह पर ताला/ पारित होता नित बिल काला/ बना हुआ/ परकटा पखेरू/ घायल हो बंदी उजियाला/ धधके अगर क्रांति चिनगारी/ देख पाप का भरा घड़ा है/ जयप्रकाश भी वहीं खड़ा है।' 1977 में दूसरी बार आजादी मिली, लेकिन जनता पाटी की सरकार आपसी कलह के कारण गिर गई। स्थायीत्व के मुद्दे पर जब 1980 में कांग्रेस की पुनः वापसी हुई, तो बिहार में सरकार 1982 में अति उत्साह में एक बार फिर अभिव्यक्ति को नियंत्रित करने के लिए 'बिहार प्रेस बिल' लेकर आई। इस बिल का व्यापक विरोध हुआ और अंततः वापस लेना पड़ा। भगवतीजी इस प्रकरण पर 'कलम करेंगे हाथ' में कहते हैं–'कलम बनाओ पेट को/ और कलम को पेट/ रोटी के भंडार के/ खुले जाएँगे गेट..., भ्रष्टतंत्र के मंत्र पर/ लोकतंत्र का खून/ बने मसीहा न्याय के/ गढ़ काले कानून।... कलम के लिए वे यहाँ/ कलम करेंगे हाथ/सिलवा लो गर होंठ तो/ भला करेंगे नाथ?(दोहा) बिहार के कुख्यात जातीय नरसंहारों पर भी प्रभाव शाली रचना हुई है 'कितनी नरबलि और?(दोहा)।

संग्रह के कुछ गीतों और दोहों में प्रेम का रंग भी खूब जमा है। दोहा में प्रेम की ऐसी अभिव्यक्ति कम देखने को मिलती है–'फगुनाहट हे गाल पर/ आँखों में मधुमास/ अधरों पर जगने लगी/ अब पावस की प्यास...छंद रचे मन ने, मगर/ मूक हो गये बैन/ लगे गुनगुनाने तभी/ कजरारे दो नैन।' (फागुनी रंग), ये पंक्तियाँ भी खूब हैं–'सराबोर क्यों हो गई। मधुरस में यह देह/ मधुशाला–से नयन में/लगा छलकने नेह।/ आँखों की इस झील में जली प्रीति–कंदील/ स्नेहित अधर लुटा रहे/ मठरी–मेवे खील।'

संग्रह में स्त्रियों पर केन्द्रित रचनाएँ अलग से ध्यान खींचती हैं (बेटियाँ, ब्याही बिटिया की पाती)। 'ब्याही बिटिया की पाती' अत्यन्त मार्मिक रचना है–'पोसा था/बछिया को... बड़े जतन से औ' मन से/ राजकुमार/ खरीदा था/ खुद भिखमंगा बन के/ ... भभक रही/ दियना–बाती/ जलते ही सँझबाती।'...

नयी कोंपलों अर्थात् नई पीढ़ी को एक बेहतर दुनिया देने के लिए कवि आरपार की लड़ाई का आवाहन करने से भी नहीं चूकता–'चोट सौ सुनार की/ एक बस लुहार की/... हाथ जगन्नाथ है/ हुनर संग साथ है/ ख्वाहिशें मचल रहीं/ शक्ल नई ढल रही/ धार हल की फाल की। फावड़े कटार की.... जो सृजन को धार दे/ हुनर से सँवार दे/ जिंदगी क्यों जल रही/ रेत–सी फिसल रही..... चोट कर लुहार की/ जंग आरपार की।' उसी प्रकार गाँव में जमींदार और शहर में पुलिस से समान रूप से प्रताड़ित आम आदमी का आवाहन इन पंक्तियों में है–'वहाँ जमींदारी कड़क/ यहाँ पुलिस की मार/ गाँव–गाँव के दरमियाँ/ जीवन हुआ पहाड़। ... विद्रोही चिनगारियाँ/ उगलेंगी कब आग/ विहँसेगा कब वह सुदिन/ जब जागेंगे भाग?' (फुटपाथी दोहे)। गीतकार को आस नयी पीढ़ी से है, लेकिन उसका मार्ग निष्कंटक बनाना भी तो वर्तमान पीढ़ी का ही दायित्व है। आखिर तो पुरानी पीढ़ी नई पौध के लिए उत्सर्ग में ही सद्गति पाती है–'तुम्हें मुबारक/ हो वसंत की/ आयातित थिरकन/ नयी कोंपलों/ की खातिर/ हम झरते जाएँगे।' वास्तव में भगवती प्रसाद द्विवेदी गीतकार हैं। कथ्य या विषय गीत–रचना में बाधा बन रहा हो, ऐसा नहीं दीखता। जटिल बात कहने में भी छंद नहीं टूटता, न लय भंग होती है। गीत और दोहे छोटी बहरों में विन्यस्त हुए हैं। इसमें देशज शब्द प्रचुरता से प्रयुक्त हुए हैं। भोजपुरी लोकोक्तियों और मुहावरों का भी सार्थक प्रयोग हुआ है। कहीं–कहीं मनोरम ग्राम्य छवियाँ पाठक का मन मोह लेती हैं। कहीं–कहीं उपमाओं का सुंदर प्रयोग हुआ है, (जिनके बिना गीत अधूरे लगते हैं),जैसे– 'रसिक काव्य की चतुष्पदी हो तुम', 'मौलसिरी–सी लाज कुँआरी', 'पपड़ियाए लब की मुसकान दूधिया', तथा 'चंदन की वीणा है देह यह तुम्हारी'। दोहों में कोमल अनुभूतियाँ हैं तो मारक व्यंग्य भी। गीतों के रसिक को भगवती प्रसाद द्विवेदी का यह संग्रह खूब भाएगा, इसमें तनिक भी संदेह नहीं। ऐसी गीत–रचनाएँ समकालीन कविता–क्षितिज को बड़ा कर रही हैं। गीतों के दिन मानो पुनः लौट आए हैं।

कविताएँ

## लोग

–मजुला उपाध्याय मंजुल
पूर्णियाँ बिहार,
9431865979

जिसने बचाया डूबने से
चाँद बनकर स्वप्न आँखों में सजाये
विजय–पथ की ओर जिसने
किये प्रभ संकेत, शैल–सा होकर खड़ा
सह धूप झंझावात, उसी को
संसार ने लांछित किया
किन्तु जिसने छल किया
निर्बल किया
और झूठी दिखा दीं हरियालियाँ
प्रपंचों के बुने जिसने जाल
दिन से रात तक
जिससे जीवन को फकत तुर्शी मिली
उसी को, इज्जत मिली, कुर्सी मिली!

## उन्मुक्त

तीर से बेधती आँखों
बाज से झपटते पंजों
उपहास की तरह गूँजते शब्दों
वमन की तरह पसरती सांसों
नाली के कीड़ों की तरह रेंगते स्पर्शों
से मुक्ति के इस युद्ध में
अस्त्र बन सके मेरा जो
ऐसी आँखें
ऐसे हाथ
ऐसे शब्द
ऐसी साँसें
और ऐसे स्पर्श के लिए
अनवरत जारी रहेगी
मेरी यह तपश्चर्या
किसी निर्जन द्वीप के
भयावह एकांत की तरह
मेरा यह एकाकीपन
इस एकाकीपन की कारा से मुक्त होकर
मिलना चाहती हूँ
पक्षियों के कलरव
प्रार्थना के शब्दों और
शंख ध्वनियों से
और करोड़–करोड़ हथेलियों की ध्वनि
असंख्य पाँवों की गति से मिलकर
समुद्र की तरह लहराना
फैलाना चाहती हूँ
आसमान की तरह।

समीक्षा

## हिन्दी के श्रेष्ठ गीत समीक्षक

# समीक्षा की कसौटी पर

डॉ. अवधेश चन्सौलिया
प्रो. हिन्दी, डी.एम.
ग्वालियर म.प्र.
मो. 9425187203

डॉ. आरती दुबे की कृति 'हिन्दी के श्रेष्ठ गीत समीक्षक : गीत समीक्षा की दृष्टि' से एक अनूठी, अद्वितीय और उल्लेखनीय कार्य को प्रकाशित करनेवाली सिद्ध होगी। अभी तक गीत और नवगीत की समीक्षा दृष्टि पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पायी, इसका कारण हिन्दी में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल से आगे किसी समीक्षक के आगे न जा पाना है। रामविलास शर्मा और नामवर सिंह के कारण मार्क्सवादी समीक्षा भी चलन में है, लेकिन सत्य तो यह है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की सीमा रेखा के उल्लंघन का साहस आजतक कोई नहीं कर पाया है। हरिवंश राय बच्चन और नीरज के गीतों को युवा वर्ग में भले ही कुछ तरजीह मिल गई हो, लेकिन समीक्षा के क्षेत्र में जो महत्व उनको मिलना चाहिए था, वह नहीं मिला। इसलिए नई कविता की तर्ज पर गीतकार ने अपने गीतों में नया विशेषण जोड़कर उसे 'नवगीत' कहकर अभिहित किया। नई कविता की तरह वे नवगीतों में भी प्रयोग करने लगे और वे नवगीतों की प्रतिष्ठा हेतु स्वयं समीक्षक भी बन बैठे। इन समीक्षकों में डॉ. सुरेश गौतम, वीरेन्द्र मिश्र, डॉ. उपेन्द्र, दिनेश सिंह, वीरेन्द्र आस्तिक, राम अधीर, दिवाकर वर्मा, ओम प्रभाकर, धर्मवीर भारतीय, विनयमोहन शर्मा आदि प्रमुख हैं। समीक्षा कृति में विदुषी लेखिका ने गीत समीक्षा की परंपरा में लोचन प्रसाद पांडेय, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा, डॉ. रामकुमार वर्मा, हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि समीक्षकों की चर्चा कर डॉ.सुरेश गौतम, उपेन्द्र, वीरेन्द्र मिश्र, दिनेश सिंह, वीरेन्द्र आस्तिक, दिवाकर वर्मा और राम अधीर के समीक्षा तत्वों पर 200 पृष्ठों में विस्तार से प्रकाश डाला है।

पुस्तक का अध्ययन करने के उपरांत यह निश्चित हो जाता है कि लेखिका ने नवगीतों को भली प्रकार पढ़ा और गुना है। यही कारण है कि वे नवगीतों का इतना अच्छा, विस्तृत और गहन विश्लेषण कर सकीं। पुराने गीतों से लेकर नवगीतों तक की समीक्षा–यात्रा में उन्हें जो नया मिला, उसे पाठकों के साथ साझा भी किया, उन्होंने आधुनिक और उत्तर आधुनिक गीतों के अंतर को पूरी सिद्दत के साथ उकेरा है। इन समीक्षकों के संबंध में वे लिखती हैं–गीत के प्रति समर्पित इन समीक्षकों ने गीत संकरणों की अनेक भूमिकाएँ लिखकर गीतों को स्पष्ट दृष्टि दी। इन समीक्षकों के अनेक उल्लेखनीय कथनों का समाहित कर कृतिकार ने गीतों की, नवगीतों की अधुनातन स्थिति को और अधिक प्रभाव रूप से स्पष्ट कर दिया है। डॉ. सुरेश गौतम को वे मानवतावादी और ललित समीक्षक कहती हैं। उनके अनुसार उन्हें पुरानी भाषा पसंद नहीं, वे वक्रोक्ति को महत्व देते हैं। नूतन और वैविध्यपूर्ण शैली उनकी समीक्षा के लिए वरदान सिद्ध हुई।

उपेन्द्रजी के संबंध में उनका मानना है कि वे कलात्मक के साथ–साथ गीतात्मकमा पर भी जोर देते हैं। वे गीतों में दार्शनिकता के दोहराव को अच्छा नहीं मानते। उनकी भाषा में पहाड़ी नदी जैसा प्रवाह है। व्यंग्य उनकी भाषा को धारदार बनाता है। वीरेन्द्र मिश्र के समीक्षा संबंधी विचार भी कृति में उल्लिखित हैं। वे कविता के प्रतिमानों को स्थापित करने की दिशा में चिंतित दिखाई पड़ते हैं। साथ ही वे मंचीय कविता के हिमायती हैं। कविता में कला और समाज दोनों को महत्व देते हैं। 'नवगीत को वे केन्द्रीय विधा के रूप में स्वीकारते हैं, क्योंकि नवगीत में व्यापकता है, लचीलापन है, सुरभि है, सौंदर्य है, कटुयथार्थ है, सामाजिक चेतना है, मिट्टी की गंध है।

दिनेश सिंह के समीक्षा तत्वों को लेखिका ने सर्वाधिक विस्तार दिया है। नवगीत, गीत, मुक्त कविता और कविता को स्पष्ट करते हुए उनका कथन है कि 'गीत की संवेदना एवं छंद, मुक्त कविता की संवेदना से अलग–अलग हो सकती है, किन्तु इनके संश्लेषण से जो एक नई संवेदना सृजन को साथ हो लेती है, वह पूरी रचना को मानवीयता यानी भारतीयता अर्थात् माटी की गंध से भर जाती है और स्वयं रचना की पहचान भी बन जाती है।'[1] (पृ0 126) वे गीत को लोकजीवन के साथ पिरोने के पक्षधर हैं। इनकी समीक्षा में गीतकार और नवगीतकार सभी सम्मिलित हैं। उनके अनुसार आज के गीतकारों में नई संवेदनाओं के साथ अभिव्यक्ति को अधिक व्यापक और सहज बनाने की बेचैनीहै। (पृ0 140) वीरेन्द्र आस्तिक का परिचय देती हुई समीक्षिका कहती हैं–वीरेन्द्र आस्तिक देश के उन गीतकारों/ नवगीतकारों में से एक हैं, जो न केवल श्रेष्ठ गीतकार हैं, अपितु गीत इतिहास, गीत आलोचक और सर्वोपरि गीत चिंतक हैं।'[2] (पृ0 142) ये कालजयी रचना को प्रमुखता देते हैं और समकालीनता तथा शाश्वतता दोनों को आवश्यक मानते हैं। वे गीत और नवगीत के अंतर को अनावश्यक बताते हैं तथा आलोचक को जीवन के बीच जाने को कहते हैं। अर्थात् आलोचना समाजोन्मुखी होनी चाहिए। दिवाकर वर्मा व्यक्तिपरक समीक्षा के हिमायती हैं। उनके अनुसार 'गीत लोक जीवन की परंपरानुमोदन से सम्पृक्त सतत गतिमान काव्य धारा है। जो हमारी भारतीय प्रकृति से मेल खाती है और जिसका उत्स सृष्टि के आदिग्रंथ से मिलता है।''[3] (पृ0 175) परिवर्तित परिस्थितियों को भी नवगीत अभिव्यक्त करने में पूर्णतः सक्षम हैं। 'धीरे–धीरे बदल रहा है। प्रजातंत्र का खाका/अपराधों के जंगल में हैं। इंसानों का ढाँका/ तस्कर, चोर/ और हत्यारे/ हैं टोली के नायक और हमें रटवाया/ जनगणमन/ अधिनायक/ ईमानों के घर में/ सुबह–शाम/ हो रहा फाँका।''[4] (पृ0 179)

समीक्षिका आधुनिक और उत्तर आधुनिक समाज का भी इस कृति में सम्यक् विवेचन करती है। कृति में अंतिम समीक्षक के रूप में रामअधीर जी की गीत/ नवगीत संबंधी मान्यताएँ स्थापित की गई हैं। उनकी ये मान्यताएँ उनके द्वारा संपादित पत्रिका में बखूबी मिलती हैं, उनकी गीत संबंधी टिप्पणियाँ आज भी चर्चित हैं। 'संपादिकी' मासिक में वे कहते हैं–''नई कविता वाले अभी भी अपनी ठसक में हैं।' किन्तु गीत के प्रति उनकी अनासक्ति में कमी आ रही है।''[5] (पृ0 199)

समीक्षिका का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि ''समीक्षा एक अनिवार्य चिंतन यात्रा है। (पुरोवाक्) समीक्षा दुष्कर कार्य है। क्योंकि अभिव्यक्ति के खतरे बहुत हैं। रचनाकार को पाठकों का डर रहत है,जब कि समीक्षक को रचनाकार और पाठक दोनों का। ऐसी स्थिति में कृतिकार आरतीजी ने बहुत अधिक जोखिम उठाया है। समीक्षकों की समीक्षा करने का दु:साहस करना कोई मामूली बात नहीं है। समीक्षा में सम्यक् दृष्टि से काम लिया गया है, लेखिका का यह प्रयास सराहनीय है। भाषा–शैली चिंतन प्रधान और सामासिक है, जो समीक्षा के अनुकूल ही है। वर्तनीगत अशुद्धियाँ प्रूफ रीडिंग की असफलतर का द्योतक है। यदि ऐसा न होता तो कृति और अधिक प्रभावी होती।

संदर्भ–1. हिन्दी के श्रेष्ठ गीत – समीक्षक डॉ. आरती दुबे, एकता प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 126
2. वही पृष्ठ 142
3. वही पृष्ठ 175
4. वही पृष्ठ 179
5. वही पृष्ठ 199

समीक्षा

# सामाजिक संघर्ष से युद्ध करती कहानियाँ

**डॉ. डी.एन.प्रसाद, प्राध्यापक**
महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीयहिन्दी विश्वविद्यालय
वर्धा (महाराष्ट्र) मो.09420063304

बोधि, प्रकाशन, जयपुर से प्रकाशित महेन्द्र नारायण पंकजजी का दूसरा कहानी संग्रह है 'युद्ध!' इन कहानियों में वस्तु वैविध्यता है, कहानियों में समाज के विभिन्न परिदृश्यों, चरित्रों, समस्याओं और संघर्षों को दिखाया गया है। आज का मनुष्य किन दर्द और मूल्यों से गुजर रहा है, इसे बड़ी सादगी और गहराई से लेखक ने अपनी कहानियों के माध्यम से पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है।

'युद्ध' कहानी संग्रह में पन्द्रह छोटी–बड़ी कहानियों के माध्यम से आज की वर्तमान परिस्थितियों में संघर्ष और समस्याओं को उजागर किया गया है।

पहली कहानी 'युद्ध' है, जिसमें दिखाया गया है वर्तमान परिवेश के स्खलन तथा राजनीति के बदलते अर्थ को। वर्तमान में छल–कपट, कुटिलता, क्रूरता और किसी भी प्रकार से सत्ता पर कब्जा कर लेना, यही मनुष्य का परम धर्म हो चुका है। इसे ही महेन्द्र नारायण पंकजजी ने दिखाने की कोशिश की है।

'इलेक्शन' कहानी में लेखक ने आज के वर्तमान चुनावी प्रक्रिया का पर्दाफाश किया है। लेखक ने दिखाया है कि किस प्रकार पार्टियाँ अपने स्वार्थ के लिए भोली–भाली जनता का उपयोग करती हैं। चुनावी प्रक्रिया लोकतांत्रिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करती है, लेकिन राजनीतिक दल अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए इसका गलत उपयोग करते हैं, जिससे समाज में अव्यवस्था और आपराधिक मूल्यों को बढ़ावा मिलता है। लेखक ने इस कहानी के माध्यम से जनता को सजग होने का उपदेश दिया है, जिससे आपराधिक प्रवृत्ति के लोग चुनावों में विजयी न होने पायें। इसलिए कहानी में लेखक ने नौजवान के माध्यम से अत्याचार न सहने को कहा है– ''आजादी क्या मिली देश को इन अफसर, पुलिसवालों का अपना मन हो गया है। जायज–नाजायज कुछ करें। अब यह सब नहीं चलेगा।....''

'वेणु का दर्द' कहानी में लेखक ने आरक्षण से जुड़ी हुई विसंगतियों को दिखाने का प्रयास किया है, जहाँ आरक्षण का उद्देश्य सदियों से शोषित–पिछड़े एवं गरीब समाज को अवसर प्रदान करना था, परन्तु आज यह राजनीति का वोट बैंक बन गया है, जिसे राजनेता परिचालित करते हैं। आज का युवा ऐसी गंभीर समस्याओं पर चिंता जाहिर करते हैं। कहानी में विनय जैसा पात्र जो ऐसी समस्या से सामना करता है, तब भी उसे जाति के मामले में वेणु के परिवारवालों के सामने बहिष्कृत किया जाता है। वही अगर वेणु महिला होकर बोलना चाहती है, तो उसे अपनी ही माँ द्वारा चुप कराया जाता है। लड़की को अगर माँ–बाप पढ़ाते हैं, तो उसे ताने सुनाने में भी नहीं चुकते। जैसे कहानी में वेणु की माँ कहती है, ''ई छौड़ी कॉलेज में जबसे पढ़ने लगी है, तबसे हमको सिखाने लगी है। बिना मार के यह ठीक नहीं होगी हरजाई।''

वर्तमान समाज में जहाँ अभिभावक अपनी लड़कियों को अच्छे–अच्छे स्कूलों में पढ़ाते–लिखाते हैं, जिससे वह समाज में फैली बुराई, विसंगतियों का सामना कर सके और जागरुक होकर एक समतामूलक समाज के निर्माण में अपना योगदान दे सके, लेकिन वेणु जैसी युवा छात्र कुछ बोलने का प्रयास करती है, तो उसे चुप करा दिया जाता है और यही पुरातन व्यवस्था की चारदीवारी में कैद कर दिया जाता है। वर्तमान परिदृश्य को देखकर लगता है लेखक ने पाठकों के सामने यह चुनौती भरा सवाल प्रस्तुत किया है कि क्या समाज में फैली विसंगतियों और बुराइयों का सामना करने का अधिकार महिलाओं को नहीं है?वहीं जातिवादी समस्या बनकर फैली हुई है, चाहे वह सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक किसी भी क्षेत्र में क्यों न हो, यह केवल अनुपयोगी ही नहीं, समाज के विघटन का कारण बनती जा रही है। यह हमारी राष्ट्रीय सुरक्षा के समक्ष गंभीर चुनौती का प्रश्न है। लेखक न पाठकों को यह बताने की कोशिश की है कि आरक्षण जैसी व्यवस्था जातिभेद, वर्गभेद में टिके रहने की नहीं है, बल्कि इसकी उपयोगिता से समतामूलक समाज की स्थापना करके बहुमुखी विकास में सहयोग देना है।

वहीं 'आखरी निर्णय' कहानी में लेखक ने सामाजिक परिवेश में बेटी का विवाह और फिर दाम्पत्य जीवन की समस्या का चित्रण प्रस्तुत किया है। विवाह इंसान के जीवन में घटित होनेवाली बहुत ही महत्वपूर्ण घटना होती है, अगर वर–वधू सुयोग्य मिल जाए तो 'परिवार' जैसी संस्था प्रगति के पथ पर चल पाती है, नहीं तो उसे कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। आज भी समाज में दहेज प्रथा अभिशाप बनकर फैली हुई है। अगर बेटी किसी गरीब बाप की होती है, तो उस लड़की को आज कई समस्याओं से गुजरना पड़ता है। कभी अनमेल विवाह, तो कभी लड़की को दाम्पत्य जीवन में प्रताड़नाएँ सहनी पड़ती हैं। कहानी में सीता और मुनीन्द्र का अनमेल विवाह होता है। सीता अपने दाम्पत्य जीवन में कई समस्याओं को झेलती है। वह कहती भी है–''अत्याचारी जुल्मी को सजा न मिले तो अत्याचार बढ़ता ही जाएगा।'' इसलिए वह अपने पति से किसी प्रकार समझौता न करके अपने पैरों पर खड़े होने का संकल्प लेती है।

'रंग में भंग' कहानी में लेखक ने युवावस्था की समस्या को दिखाया है कि आज युवा लड़का पहले अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता है, फिर विवाह करके अपना जीवन निर्वाह करना चाहता है। लेकिन माँ–बाप अपने बच्चों का विवाह अपनी मर्जी से करवाना चाहते हैं। कुछ तो दहेज के चक्कर में और कुछ सामाजिक परिवेश को देखकर। कहानी में एक पात्र कहती है–''विकास की शादी कर दो, उसमें जो दहेज मिलेगा, उससे शैलजा की बाली भी बन जाएगी और उसका विवाह भी जो जाएगा।''

समाज के बदलते हुए परिवेश का प्रभाव या दुष्प्रभाव कहिए, यह नजर आता है कि माँ–बाप अगर बिना मर्जी से विवाह कराते हैं, तो 'वर' या 'वधु' रंग में भंग करते हुए नजर आते हैं; क्योंकि वह किसी बँधी बँधायी परिपाटी में न फँसकर बल्कि बदलती हुई सोच द्वारा अपनी मान्यताओं के आलोक में समाज को एक नया स्वरूप प्रदान करते हैं। आधुनिक भारतीय समाज में जहाँ विचारों की स्वतंत्रता की माँग है, तो वहीं अगर माता–पिता अपने बच्चों से परंपरागत दायित्वों का निर्वाह करने को कहते हैं, तो बच्चों द्वारा माता–पिता के निर्णयों का विरोध प्रारंभ हो जाता है।

दूसरी स्थिति समाज की यह है कि जिसे 'संकल्प' कहानी में लेखक ने दिखाया है कि किस प्रकार गाँवों में एक शक्तिशाली वर्ग अपने कमजोर वर्ग की जमीन हड़पने में माहिर होता है। कमजोर वर्ग अपनी जमीन को पाने के लिए निरंतर संघर्ष करता रहता है। भारतीय समाज की ऐसी चुनौतीपूर्ण समस्या आज भी गाँवों और शहरों में देखने को मिलती है।

तत्त्वतः लेखक की संवेदना अपने परिवेश को ग्रहण करती है, इसलिए लेखक खुद कहता है–''मैंने अपने जीवन में जो दुःख देखे और झेले, उसे समाज के बहुसंख्यक मेहनतकश जनता को झेलते देखता हूँ, तो हृदय द्रवित हो जाता है।''

इसलिए 'युद्ध' कहानी संग्रह में लेखक ने अपनी कहानियों के पात्रों के माध्यम से समाज में परिवर्तन कर एक वर्ग विहीन, शोषण–मुक्त समाज की परिकल्पना को दिखाया है, जिससे पाठकों को कहानी सिर्फ मनोरंजन ही नहीं दे, बल्कि उन्हें समाज के प्रति जागरुक बना सके और अपने परिवर्तनों का रुख बेहतर भविष्य की ओर कर सके।

कृतित्व

# महेंद्र मिसिर : साहित्य आकदमी की अनुपम प्रस्तुति

डॉ. अर्जुन तिवारी
निदेशक, काशी पत्रकारिता, वाराणसी
मो0 08765840

जीवन जागरण है न कि सुषुप्ति, उत्थान है, न कि पतन। इसी के चलते जीवन–चरित को ही जीवन्त इतिहास कहा गया है। धीर वीर गंभीर महापुरुषों की जीवनयात्रा से अपरिचित रहना जीवन भर बालक रहना है। 'अप्पदीपो भव' के मंगलकारी संदेश को जन–जन तक पहुँचाने के लिए साहित्य अकादमी (नई दिल्ली) द्वारा 'भारतीय साहित्य के निर्माता' का प्रकाशन अनुकरणीय सद्गुणों को आत्मसात् करने का प्रभावकारी प्रयास है, जिसके निमित्त अकादमी साधुवाद का अधिकारी है। इसी कड़ी में 'महेंद्र मिसिर' पर प्रस्तुत मोनोग्राफ द्वारा राष्ट्रनायक सुभाषचन्द्र बोस की ऊक्ति को चरितार्थ किया गया है–'मनुष्य का जीवन इसलिए है कि वह अत्याचार के खिलाफ लड़े, राष्ट्र को छलनेवाली ब्रिटिश सरकार की करनी से व्यथित होकर मिसिर जी ने लिखा–हमरा नीको ना लागे रामा गोरन के करनी।

रुपया ले गइले, पइसा ले गइले, ले गइले सारा गिन्नी।
ओकर बदला में देके गइले, ठल्ली के दुअन्नी।

पूर्वांचल की मिट्टी के इस सपूत के बिना हिन्दी इतिहास की कल्पना असंभव है। लेखन–गायन–वादन में इतिहास रचयिता महेन्द्रजी ने विधिवत् स्कूली शिक्षा प्राप्त नहीं की। पहलवानी, घुड़सवारी कला में माहिर मिसिरजी आशुकवित्व और हाजिरजवाबी में जवाब थे। जितने सफल कवि–कलाकर, उतने ही समर्पित स्वतंत्रता सेनानी और उससे भी बाहर धर्म, अध्यात्म भक्ति के तत्ववेत्ता। वस्तुत: उनके भक्ति काव्य की खोज और पूरबी गीतों में अकथनीय सम्मोहन है। इसलिए वह जन–जन की जुबान पर है।

'गुण न हिराने गुणग्राहक हिराने हैं' इस कथन का अपवाद साहित्य अकादमी (नई दिल्ली) है, जो सुधी मनीषियों, श्रेष्ठ लेखकों को खोजता रहता है तथा उन्हीं से विशिष्ट साहित्य निर्माताओं को अजर–अमर अनुकरणीय बनाता है। महेन्द्र मिसिर के विविध आयामी जीवन, बहुक्षेत्रीय क्रियाशीलता एवं बहुविधात्मक रचनाशीलता को रेखांकित करने हेतु भगवती प्रसाद द्विवेदी का मनोनयन इसी शृंखला का एक स्तुत्य कार्य है, जिससे अकादमी की गुणवत्ता, दूरदर्शिता का साक्षात्कार हो रहा है। हिन्दी, भोजपुरी, अंग्रेजी के शिखरस्थ साहित्यकार श्रीद्विवेदी ने अपनी शोधपरक पैनी दृष्टि के बल पर मिसिर जी के अथाह जीवन सागर से रत्नों को खोज निकाला है, उसे सरल, सहज, मनोहारी रूप में लिपिबद्ध कर हिन्दी पाठकों को एक अनमोल थाती भेंट की है। महेन्द्रजी के जीवन में पहला गीत जो उनके स्वर से फूटा शिव–आराधना पर केन्द्रित था, उनकी अटल प्रतिज्ञा थी कि आजीवन स्वरचित गीत ही गायेंगे, जिसका निर्वाह अंत तक हुआ। ऐसे तथ्यों को उजागर करने की क्षमता द्विवेदी जी में ही है, जिससे हिन्दी जगत उनका ऋणी है।

ग्रंथ 'महेन्द्र मिसिर' में 'व्यक्तित्व के आयाम और जीवन यात्रा', 'सृजन–संसार', 'स्वाधीनता संग्राम में ऐतिहासिक अवदान', 'महेन्द्र मिसिर और पूरबी', 'अपूर्व रामायण और भक्ति काव्य', 'कालजयी निर्गुण : लोक का डर, लोक का स्वर', 'महेन्द्र मिसिर और भिखारी ठाकुर' आदि चौदह अध्यायों में पूरबी गीत सम्राट मिसिरजी के विशिष्ट व्यक्तित्व और कृतित्व का सांगोपांग चित्रण हुआ है।

वह साहित्यकार धन्य है, जो अपने जीवन में ही किंवदन्ती बन गया हो। मिसिर जी पर तीन उपन्यास प्रकाशित हुए। आचार्य पांडेय कपिल का उपन्यास 'फुलसुंथी', रामनाथ पांडेय का 'महेन्द्र मिसिर' और जौहर सफियाबादी का 'पूर्वी के धाह'। 'फुलसुंथी' में सच्चा प्रणय निवेदन तथा सर्वस्व न्योछावर कर देने की आतुरता अभिव्यक्त है, तो 'महेन्द्र मिसिर' में बंगाल के संन्यासी आंदोलन से सम्बद्ध, फिरंगी अर्थव्यवस्था को ध्वस्त करने वाले राष्ट्रभक्त योद्धा का चरित्र उजागर हुआ है। पूरबी सम्राट और सुराजी आंदोलन के अग्रदूत के रूप में मिसिर जी को 'पूरबी के धाह' में चित्रित किया गया है। इसके अतिरिक्त कवयित्री डॉ. अनामिका के स्त्री विमर्श पर केन्द्रित उपन्यास 'दस द्वारे का पिंजरा' में महेन्द्र जी तथा ढेलाबाई के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

विद्यापति के 'देसिल बयना सब जन मिट्ठा' तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'निज भाषा उन्नति' से प्रेरित होकर मिसिर जी पूरबी गीतों के प्रणेता बन गये। 'भाषा मेरी पूरबी' में उनके गीत सात समुंदर पार में भी गाये जाते हैं।

माया के नगरिया में लागल बा बजरिया, ए सोहागिन सुनऽ
चीजवा बिकाला अनमोल, ए सोहागिन सुनऽ
गावत महेन्द्र मिसिर इहो रे पुरबिया
मोर संवरिया रे, देखलो में जिया ना अघाय।

पूरबी मन 'मोही मन' होता है। अपनी मिट्टी, हवा, संस्कृति, भाषा–भूषा किसी को छोड़ना नहीं चाहता। वह अपनी परंपरा और मान्यताओं से संश्लिष्ट रहता है। वह मुक्ति का नहीं, बंधन का, उसे संबंध में परिणत कर देने का आकांक्षी होता है। पूरबी को भक्ति ओर प्रेम से सराबोर कर मिसिर जी ने अकथनीय लोकप्रियता प्राप्त के साथ ही भोजपुरी भाषा को नूतन संस्कार, शब्द की कोमलता और ध्वनिसंगीत की मधुरता दी। भोजपुरी समाज में व्याप्त बेमेल विवाह में नारी के अंतर्मन की व्यथा की पड़ताल की गई है।

सभका के देलऽ रामजी अन धन सोनमा,
बनवारी हो, हमरा के लरिका भतार।
————————————
खोले के त चोलीबंद, खोलेला केवाड़,
बनवारी हो, जरि गेलै एड़ी से कपार।।

कविवर मिसिर जी ने जोखिम उठाते हुए लोकभाषा के अनगढ़ शब्दों को अनकूल साँचे में ढालकर जो अर्थवत्त प्रदान की है, वह न केवल कंठ–प्रकोष्ठ की शोभा है, बल्कि चिरकाल तक हर होंठ की थिरकन बनने हेतु पर्याप्त है।

भोजपुरी भाषा, साहित्य, संस्कृति और संस्कार को ऊँचाई देने में महेन्द्र मिसिर शीर्षस्थ हैं। उन्हें भारत ही नहीं, अपितु विदेशों में जन–जन के कंठहार के रूप में टालने में लेखक भगवती प्रसाद द्विवेदी की लेखन शैली अत्यंत प्रभावकारी सिद्ध हुई है। सरल, सामयिक उद्धरणों द्वारा मिसिरजी की काव्य प्रतिभा के निरूपण में उन्हें अकूत सफलता प्राप्त है।

इस कृति के प्रकाशन में यदि कोई त्रुटि निकालने पर आमादा हो तो यही कह सकता है कि कवरपेज पर रेखांकित महेन्द्र मिसिर जी का रूप–रंग कुछ भिन्न है। कोटि मनोज लजावन हारे' महेन्द्रजी का बुलंद व्यक्तित्व अत्यन्त मोहक चित्ताकर्षक था, जिसपर देखनेवाले लट्टू हो जाते थे। रसिकप्रवर को देखते ही 'ज्यों–ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यों–त्यों खरी निकरै री निकाई' की स्थिति थी। अधुनातन प्रिंटिंग टेक्नालॉजी के युग में मिसिरजी के संग्रहणीय मढ़ाकर रखने लायक चित्र की कमी खलेगी।

लोक–संस्कृति के संरक्षण और उसे जीवन्तता प्रदान करने की भूमिका के निर्वहन में 'महेन्द्र मिसिर' ग्रंथ की उपयोगिता सदैव बनी रहेगी। प्रकाशक, लेखक को बार–बार बधाई।

निबंध

# गेहूँ बनाम गुलाब

रामवृक्ष बेनीपुर

गेहूँ हम खाते हैं, गुलाब सूँघते हैं। एक से शरीर की पुष्टि होती है, दूसरे से मानस तृप्त होता है। गेहूँ बड़ा या गुलाब ?हम क्या चाहते हैं–पुष्ट शरीर या तृप्त मानस ?या पुष्ट शरीर पर तृप्त मानस ?

जब मानव पृथ्वी पर आया, भूख लेकर। क्षुधा, क्षुधा, पिपासा–पिपासा। क्या खाए, क्या पिए ?माँ के स्तनों को निचोड़ा, वृक्षों को झकझोरा, कीट–पतंग, पशु–पक्षी–कुछ न छूट पाये उससे।

गेहूँ–उसकी भूख का काफला आज गेहूँ पर टूट पड़ा है। गेहूँ उपजाओ, गेहूँ उपजाओ, गेहूँ उपजाओ! मैदान जाते जा रहे हैं, बाग उजाड़े जा रहे हैं–गेहूँ के लिए।

बेचारा गुलाब–भरी जवानी में सिसकियाँ ले रहा है। शरीर की आवश्यकता में मानसिक वृत्तियों को कहीं कोने में डाल रक्खा है, दबा रक्खा है।

किन्तु, चाहे कच्चा चरे या पकाकर खाए–गेहूँ तक पशु और मानव में क्या अंतर ?मानव को मानव बनाया गुलाब ने। मानव मानव तब बना जब उसने शरीर की आवश्यकताओं पर मानसिक वृत्तियों को तरजीह दी।

यही नहीं, जब उसकी भूख खाँव–खाँव कर रही थी, तब भी उसकी आँखें गुलाब पर टँगी थीं। उसका प्रथम संगीत निकला, जब उसकी कामिनियाँ गेहूँ को ऊखल और चक्की में पीस–कूट रही थीं। पशुओं को मारकर, खाकर ही वह तृप्त नहीं हुआ, उनकी खाल का बनाया ढोल और उनकी सींग की बनाई तुरही। मछली मारने के लिए जब वह अपनी नाव में पतवार का पंख लगाकर जल पर उड़ा जा रहा था, तब उसके छप–छप में उसने ताल पाया, तराने छोड़े। बाँस से उसने लाठी ही नहीं बनायी, वंशी भी बनायी।

रात का काला घुप्प पर्दा दूर हुआ, तब वह उच्छवसित हुआ सिर्फ इसलिए नहीं कि अब पेटपूजा की समिधा जुटाने में उसे सहूलियत मिलेगी, बल्कि वह आनंद विभोर हुआ, उषा की लालिमा से, उगते सूरज की शनैः शनैः प्रस्फुटित होनेवाली सुनहली किरणों से पृथ्वी पर चम–चम करते लक्ष–लक्ष ओसकणों से। आसमान में जब बादल उमड़े तब उनमें अपनी कृषि का आरोप करके ही वह प्रसन्न नहीं हुआ, उनके सौंदर्यबोध ने उसे मन मोर को नाच उठने के लिए लाचार किया। इन्द्रधनुष ने उसके हृदय को भी इन्द्रधनुषी रंग में रँग दिया।

मानव शरीर में पेट का स्थान नीचे है, हृदय का ऊपर और मस्तिष्क का सबसे ऊपर। पशुओं की तरह उसका पेट और मानस समानांतर रेखा में नहीं है। जिस दिन वह सीधे तनकर खड़ा हुआ, मानस ने उसके पेट पर विजय की घोषणा की।

गेहूँ की आवश्यकता उसे है, किन्तु उसकी चेष्टा रही है गेहूँ पर विजय प्राप्त करने की। उपवास, व्रत, तपस्या आदि उसी चेष्टा के भिन्न–भिन्न रूप रहे हैं। जबतक मानव के जीवन में गेहूँ और गुलाब का संतुलन रहा, वह सुखी रहा, आनंदमय रहा। वह कमाता हुआ गाता था और गाता हुआ कमाता था। उसे श्रम के साथ संगीत बँधा हुआ था और संगीत के साथ श्रम।

उसका साँवला दिन में गायें चराता था, रात में रास रचाता था। पृथ्वी पर चलता हुआ वह आकाश को नहीं भूला था और जब आकाश पर उसकी नजरें गड़ी थीं, उसे याद था कि उसके पैर मिट्टी पर हैं। किन्तु धीरे–धीरे यह संतुलन टूटा।

अब गेहूँ प्रतीक बन गया हड्डी तोड़नेवाला, उबानेवाला, थकानेवाला, नारकीय यंत्रणाएँ देनेवाले श्रम का, वह श्रम, जो पेट की क्षुधा भी अच्छी तरह शांत न कर सके। अब गुलाब बन गया विलासिता का–भ्रष्टाचार का, गंदगी और गलीज का। वह विलासिता, जो शरीर को नष्ट करती है और मानस को भी।

अब उसके साँवले ने हाथ में शंख और चक्र लिये। नतीजा–महाभारत और यदुवंशियों का सर्वनाश। वह परंपरा चली आ रही है। आज चारो ओर महाभारत है, गृहयुद्ध है, सर्वनाश है, महानाश है। गेहूँ सिर धुन रहा है खेतों में, गुलाब रो रहा है बगीचों में–दोनों अपने–अपने कर्ताओं के भाग्य पर, दुर्भाग्य पर। चलो पीछे मुड़ो। गेहूँ और गुलाब में हम एक बार फिर सम–तुलन स्थापित करें, किंतु मानव क्या पीछे मुड़ा है ?मुड़ सकता है?

यह महायात्री चलता रहा है, चलता रहेगा। और क्या नवीन सम–तुलन चिरस्थायी हो सकेगा ?क्या इतिहास फिर दुहराकर नहीं रहेगा ?नहीं, मानव को पीछे मोड़ने की चेष्टा न करो। अब गुलाब और गेहूँ में फिर सम–तुलन लाने की चेष्टा में सिर खपाने की आवश्यकता नहीं।

अब गेहूँ और गुलाब पर विजय प्राप्त करें। गेहूँ पर गुलाब की विजय, चिर विजय। अब नए मानव की यह नई आकांक्षा हो। क्या यह संभव है ?बिल्कुल सोलह आने संभव है। विज्ञान ने बता दिया है–यह गेहूँ क्या है और उसने यह भी जता दिया है कि मानव में यह चिरबुभुक्षा क्यों है।

गेहूँ का गेहुँत्व क्या है, हम जान गये हैं। यह गेहुँत्व उसमें आता कहाँ से है, हमसे यह छिपा नहीं है। पृथ्वी और आकाश के कुछ तत्व एक विशेष प्रतिक्रिया के पौदों की बालियों में संगृहीत होकर गेहूँ बन जाते हैं। उन्हीं तत्वों की कमी हमारे शरीर में भूख नाम पाती है। क्यों पृथ्वी की कुड़ाई–जुताई–गुड़ाई ?हम पृथ्वी और आकाश के नीचे इन तत्वों को क्यों न ग्रहण करें ?यह अनहोनी बात'–युटोपिया, युटोपिया!

हाँ, यह अनहोनी बात, युटोपिया तबतक बनी रहेगी, जबतक मानव संहारकांड के लिए ही आकाश–पाताल एक करता रहेगा। ज्यों ही उसने जीवन की समस्याओं पर ध्यान दिया, यह बात हस्तामलकवत् सिद्ध होकर रहेगी।

और विज्ञान को इस ओर आना है, नहीं तो मानव का क्या, सर्व ब्रह्मांड पर संहार निश्चित है। विज्ञान धीरे–धीरे इस ओर कदम बढ़ा रहा है। कम से कम इतना तो अवश्य ही कर देगा कि गेहूँ इतना पैदा हो कि जीवन की परमावश्यक वस्तुएँ हवा, पानी की तरह इफराद हो जाएँ। बीज, खाद, सिंचाई, जुताई के ऐसे तरीके और किस्म आदि तो निकलते ही जा रहे हैं, जो गेहूँ की समस्या को हल कर दें।

प्रचुरता–शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करनेवाले साधनों की प्रचुरता–की ओर आज का मानव प्रभावित हो रहा है। प्रचुरता ?एक प्रश्नचिह्न! क्या प्रचुरता मानव को सुख और शान्ति दे सकती है?'हमारा सोने का हिन्दुस्तान'–यह गीत गाइए, किन्तु यह न भूलिए कि यहाँ एक सोने की नगरी थी, जिसमें राक्षसता निवास करती थी। जिसे दूसरे की बहू–बेटियों को उड़ा ले जाने में तनिक भी झिझक नहीं थी। राक्षसता–जो रक्त पीती थी, जो अभक्ष्य खाती थी, जिसके अकाय शरीर था, दस सिर थे, जो छह महीने सोती थी।

गेहूँ बड़ा प्रबल है–वह बहुत दिनों तक हमें शरीर का गुलाम बनाकर रखना चाहेगा। पेट की क्षुधा शांत कीजिए, तो वह वासनाओं की क्षुधा जाग्रत कर बहुत दिनों तक आपको तबाह करना चाहेगा। तो प्रचुरता में भी राक्षसता न आवे, इसके लिए क्या उपाय ?अपनी मनोवृत्तियों को वश में करने के लिए आज का मनोवैज्ञानिक दो उपाय बताता है–इंद्रियों का संयमन की और वृत्तियों को ऊर्ध्वगामी करने की।

संयमन का उपदेश हमारी ऋषि–मुनि देते आए हैं, किंतु इसके बुरे नतीजे भी हमारे सामने हैं–बड़े–बड़े तपस्वियों की लंबी–लंबी तपस्याएँ एक

रंभा, एक मेनका, एक उर्वशी की मुस्कान पर स्खलित हो गयी। आज भी देखिए, गांधीजी के तीस वर्ष के उपदेशों पर चलनेवाले हम तपस्वी किस तरह दिन–दिन नीचे गिरते जा रहे हैं। इसलिए उपाय एकमात्र है—वृत्तियों का ऊर्ध्वगमन करना। कामनाओं को स्थूल वासनाओं के क्षेत्र से ऊपर उठकर सूक्ष्म भावनाओं की ओर प्रवृत्त कीजिए। शरीर पर मानस की पूर्ण प्रभुता स्थापित हो–गेहूँ और गुलाब की।

गेहूँ के बाद गुलाब–बीच में दूसरा टिकाव नहीं, ठहराव नहीं। गेहूँ की दुनिया खत्म होने जा रही है। यह दुनिया का आर्थिक और राजनीतिक रूप में हम सब पर छाई है। जो आर्थिक रूप से रक्त पीती रही, राजनीतिक रूप में रक्त बहाती रही।

अब वह दुनिया आनेवाली है, जिसे हम गुलाब की दुनिया कहेंगे। गुलाब की दुनिया–मानस का संसार–सांस्कृतिक जगत। अहा, कैसा वह शुभ दिन होगा हम स्थूल शारीरिक आवश्यकताओं की जंजीर तोड़कर सूक्ष्म मानव जगत का नया लोक बनाएँगे?जब गेहूँ से हमारा पिंड छूट जाएगा और हम गुलाब की दुनिया में स्वच्छंद विहार करेंगे। गुलाब की दुनिया, रंगों की दुनिया, सुगंधों की दुनिया।

भौंरे नाच रहे हैं, फुलसूँघनी फुदक रही है! नृत्य,गीत आनंद, उछाह। कहीं गंदगी नहीं, कहीं कुरूपता नहीं, आंगन में गुलाब, खेतों में गुलाब, गालों पर गुलाब खिल रहे हैं, आँखों से गुलाब झाँक रहा। जब सारा मानव जीवन रंगमय,सुगंधमय, नृत्यमय, गीतमय बन जाएगा, वह दिन कब आएगा?

वह आ रहा है, क्या आप देख नहीं रहे हैं, कैसी आँखें हैं आपकी। शायद उनपर गेहूँ का मोटा पर्दा पड़ा हुआ है। पर्दे को हटाइए और देखिए वह अलौकिक स्वर्गिक दृश्य इसी लोक में, अपनी इस मिट्टी की पृथ्वी पर ही। शौके दीदार अगर है, तो नजर पैदा कर।

प्रिय मित्र,

दयानन्द जायसवाल, संस्थापक सह प्रधान संपादक 'सुसंभाव्य' के व्यक्ति एवं कीर्तित्व को समर्पित....

# सम्मान के दो शब्द

## गीत

–डॉ. अश्विनी,
भागलपुर 9470023033

हे दया तेरी कथा किससे कहूँ मैं
तुम तथागत हो गये सबसे कहूँ मैं
तुम तो साधक हो समय के पार भी हो
तुम सबों का प्यार व मनुहार भी हो
साधना का मंत्र तुझमें है समाया
तुम सदा समवेत स्वर हुंकार भी हो
तुम पुरुष पुरुषार्थ हो किससे कहूँ मैं

मैं खड़ा हूँ द्वार पर कुछ दान दे दो
मैं अकिंचन सा खड़ा हूँ गान दे दो
दीप सा जलता तिमिर को मारते तुम
प्रेम का अवदान हो कुछ ज्ञान दे दो
हम भटकते हैं यहाँ किससे कहूँ मैं
हे दया तेरी कथा किससे कहूँ मैं

जग तमाशा बन यहाँ ललकारता है,
नाग सा फन काढ़ता फुफकारता है
प्यार तो बिकता है यहाँ बाजार में है
लूटता सबको यहाँ दुत्कारता है
यज्ञ की समिधा तुम्हीं किससे कहूँ मैं
तुम तथागत हो गये किससे कहूँ मैं

है सरल अति सौम्य पावन सी कथा
तुम दधीचि हो गये सबको पता
हो समाधि में खड़े आनंदवन तुम
मौन हो मंदार सा सागर मथा
तुम सुधा का दान दो किससे कहूँ मैं

हे दया तेरी कथा किससे कहूँ मैं
मन बसन्ती प्यार का संसार हो तुम
स्वच्छ निश्चल नव मलय की धार हो तुम
खिल गयी बागों की कलियाँ हैं सभी
अर्चना के पुष्प का शृंगार हो तुम
संत सी काया तेरी किससे कहूँ मैं
तुम तथागत हो गये सबसे कहूँ मैं

सर्वमंगल कामना सृजन कला हो,
तुम सनातन सार जगती का भला हो
छन्द जीवन प्राण शक्ति खोलता है
फूल तुम मधुमास का जैसे खिला हो
तुम सखा शाश्वत कथा किससे कहूँ मैं
तुम तथागत हो गये सबसे कहूँ मैं

ज्ञान हो विज्ञान हो अभियान भी हो
प्रेम शतदल सा खिला अभिज्ञान हो
पास हो पर यात्रा लंबी तेरी है
शंख की आवाज हो आजान भी हो
तुम हो मिट्टी की महक सबसे कहूँ मैं
हे दया तेरी कथा किससे कहूँ मैं

तुम दलित उद्धार नारी की व्यथा हो
तुम उकेरे हो सदा उनकी दशा को
बोलते हैं हम नहीं जग बोलता है
मूल्यबोधी वेदना की तुम कथा हो
तुम शरीरी अशरीरी क्या कहूँ मैं
हे दया तेरी कथा किससे कहूँ मैं

जागरण के गीत गायक भी तुम्हीं हो
बाँसुरी पर नाचते नायक तुम्हीं हो
उत्सवों में लीन महारास भी तुम्हीं हो
सारभूत सत्ता विधायक भी तुम्हीं हो
मीत हो सबके तुम्हीं सबसे कहूँ मैं
तुम तथागत हो गये सबसे कहूँ मैं

समीक्षा

# तापसी उपन्यास में विधवा जीवन:

## कुसुम अंसल

–प्रो.गजानन सर्वज्ञ,
हिन्दी विभाग, भाषा अभ्यास प्रशाला एवं
संशोधन केन्द्र उत्तरमहाराष्ट्र विश्वविद्यालय, जलगाँव

भूमिका–आज के भारतीय स्त्री विमर्श ने मार्क्सवाद तथा नारीवाद के सकारात्मक पक्षों को आत्मसात कर लिया है। उसने अपने इस नये रूप में भारतीय स्त्री संदर्भों को पूरे विश्व को जोड़ दिया है। इस जटिल विमर्श का भारतीय संदर्भ भी वर्ग (निम्न, मध्य, उच्च) वर्ण (परिवार, रिश्ते नाते व जाति) शिक्षा, पुरुष–स्त्री संबंध, केवल स्त्री देह या सेक्स सिंबल, पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था के खिलाफ आवाज आदि मुद्दों से जुड़ गया है। इनमें प्रमुख रूप से विवाह, सेक्स, स्त्री की अस्मिता व अधिकार, स्त्री का मनुष्य होना, उसकी देह की सत्ता आदि पर नये ढंग से सोचने का भाव निहित है। स्त्री ने लीक से हटकर ही सभी पारंपरिक मान्यताओं की त्रुटियों को दर्शाया है। उसने अपनी चेतना, शिक्षा, प्रतिभा और कड़ी मेहनत के बल पर अपनी अलग पहचान बनायी है। आज स्त्री ''हर क्षेत्र में होनेवाले शोषण के खिलाफ वह आवाज उठाने लगी है। अन्याय–अत्याचारों का विरोध और मुक्ति की कामना वह प्रबलता से करती दिखाई देती है।''1 उसने अपनी मुक्ति की कामना अकेलेपन में नहीं, समूह के साथ व्यक्त की है और इस प्रकार के 'स्त्री–विमर्श' के लिए वाचा फोड़ने का कार्य मैत्रेयी, पुष्पा,चित्रा मुदगल, अलका सरावगी, नासिरा शर्मा, कुसुम अंसल जैसी महिला लेखिकाएँ अपने लेखन द्वारा करती है।

'तापसी' यह कुसुम अंसल का नारी की जीवंत समस्या पर आधारित उपन्यास है। भारतीय सामाजिक और धार्मिक स्थिति का जायजा इस उपन्यास में लिया गया है। आज इक्कीसवीं सदी में भी धर्म और सामाजिक परंपरा के नाम पर 'स्त्री' पर किस प्रकार के अन्याय–अत्याचार किये जाते हैं, इस बात का अत्यन्त सजीव चित्रण 'तापसी' उन्यास के अंतर्गत किया गया है। यह कहना कतई अतिशयोक्ति नहीं है कि धार्मिक स्थलों की आड़ में हमेशा समाज के भेड़िए अनाचार व्यभिचार और अत्याचार का खेल खेलने से बाज नहीं आते। वृंदावन हो या बनारस, काशी हो या कामाख्या सब जगह समाज से बहिष्कृत महिलाओं पर जुर्म होते नजर आते हैं।

'तापसी' उपन्यास के विषय में लेखिका कुसुम अंसल उपन्यास की भूमिका में लिखती हैं–मैं तो केवल समाज के सम्मुख उन विधवाओं का जो विशेष रूप से बंगाल से आई है या खदेड दी गई है, उनका दर्दीला यथार्थ, उन आश्रमों का कालकोठरी जैसा परिवेश खरीद–फरोख्त होते जिस्म, नैतिक–अनैतिक सभी कर्म, चोरी, वेश्यावृत्ति, बेबस हाथ, मजीरा बजाकर 'हरिधुन' गाते मुखौटों पर सच बयान करना चाहती हूँ।[2] इस बात से हम वृन्दावन के विधवा आश्रमों में होनेवाले कुकर्मों को समझ सकते हैं सकते हैं। समाज से तिरस्कृत, बहिष्कृत और अनादृत नारी समाज आज भी कितना उत्पीड़ित है, उसकी नंगी तस्वीर सामने रखकर कुसुमजी ने निश्चित रूप से साहस का परिचय दिया है।

'तापसी' यह नारी प्रधान उपन्यास है। इस उपन्यास की केन्द्रीय पात्र 'तापसी' है। तापसी का चरित्र आरंभ से अंत दु:ख और पीड़ा को सहनेवाला है। उपन्यास का आरंभ पाठकों की आँखों को विस्फारित करता है। तापसी वृंदावन के 'राधाकृष्ण विधवा आश्रम' के किसी अँधेरे कमरे में मूर्च्छित स्थिति में पड़ी हुई है। आपने आपको वीभत्स–सी, घृणा–सी दशा में पाकर काँप जाती है, पर वह कुछ कर नहीं सकती।''यह स्त्री के समूचे मनुष्यपन की लाचारी–तिरस्कार का प्रारंभ है और उपन्यास के अंत तक चलता है।''3 तापसी को बचपन से ही घर में पियक्कड़ मूर्तिकार रखाल काका की कुरता और नग्नता का दर्शन करना पड़ा था। बाहर उसे जतिन दा और कनिका दी के घर में भोलानाथ की तरह एक नौकरानी बनकर रहना पड़ता था। वह बहुत पढ़ना चाहती थी, लेकिन छोटी उम्र में ही उसकी शादी रखाल काका और जतिन दा ने मिलकर मजुमदार बाबू के साथ करा दी। मजुमदार बाबू का परिवार एक साधारण–सा था। परिवार में केवल एक बूढ़ी माँ थी। मजुमदार बाबू पूर्ण पुरुष (नपुंसक) नहीं थे। वह तापसी को हर रोज मारते–पीटते थे और उसे बहुत यातनाएँ देते थे। तापसी जबतक सहन कर सकती थी, तबतक सहती रही। फिर इस अन्याय–अत्याचार के खिलाफ एक दिन उसने आवाज उठाई और गुस्से के साथ कहा–''बस, अब मुझे हाथ मत लगाना। बहुत हो चुका। अब बर्दाश्त नहीं होता। अगर मुझे छुआ भी तो देखना मैं तेरी जान ले लूँगी। छोडूँगी नहीं तुझे। समझा क्या है तूने।''4 इस बात से समझ सकते हैं कि स्त्री की सहन करने की क्षमता अगर खतम होती है, तो वह पुरुष के अन्याय किस प्रकार प्रतिकार करती है और दुर्गा का रूप धारण करती है। तापसी के इस कथन पर मजुमदार बाबू तापसी से कहते हैं कि ''अच्छा, मुझे मारेगी मुझे?तो पता है मेरे मरने के बाद विधवा हो जाएगी तू?आमि मरे परे तोर काँचकला आर चाल जुटबे ना (मेरे मरने के बाद तुझे चावल और कच्चा केला भी नहीं मिलेगा।)''5 इस बात से केवल मजुमदार बाबू का ही नहीं पुरुष जाति का स्त्री के प्रति देखने का दृष्टिकोण उजागर होता है। इसका मतलब स्त्री केवल पुरुष पर ही आश्रित है, उसकी स्वयं की कोई पहचान नहीं है। अगर पति ना हो तो पत्नी के जीवन की कोई कीमत नहीं होती है, ऐसा माना जाता है। और कुछ दिनों में वैसा ही घटित होता है। तापसी के विद्रोह के कारण मजुमदार बाबू बहुत दु:खी हो जाते हैं और बीमार पड़ते हैं। उसी बीमारी में उनकी मृत्यु हो जाती है। फिर तापसी को कोई अपना नहीं समझता और उसी एक रिश्तेदार वृंदावन के 'राधाकृष्ण विधवा आश्रम' में छोड़ जाता है।

वृंदावन में तापसी जिस आश्रम में रहती है। उस आश्रम की व्यवस्थापिका 'अंबिका देवी' है। वह एक धूर्त, कपटी और नीच महिला है। आश्रम की विधवाओं पर वह बहुत घिनौने अन्याय और अत्याचार करती है। 'तापसी' उपन्यास के बारे में कहा गया है कि ''यह उस कब्र की कहानी है, जिसमें तापसी के अलावा वृंदा, बरौता, नुराबाई जैसी मरी हुई औरतें रहती हैं। इस संसार में उनका कोई नहीं, भगवन भी नहीं।'' इस अन्याय और अत्याचार को भुगत रही है। आश्रम में बरौता सब विधवाओं पर अपना रोब जमाती है और वहाँ की विधवाओं का समलैंगिक शोषण भी करती है। आश्रम में होनवाले शोषण के संबंध में कुसुमजी कहती है–''नरकंकाल जैसी भूखी बीमार, बेसहारा वह विधवाएँ जैसे अपने जन्म लेने की सजा भुगत रही है। कालकोठरी जैसे अंधेरे में डूबे उन आश्रमों में उनकी चेतना का रूपांतरण यांत्रिक या मैकनिकल ढंग से किया जाता है। उन विधवाओं का जाप जैसे कील पर हथौड़ा, जिसे आश्रम विधवाओं के नियम ठोकठाक कर बैठाना चाह रहे हैं। यह आश्रम विधवाओं को मनुष्यत्व की योनि उसके प्राकृतिक स्वरूप से निकालकर उन्हें एक परतंत्र ईकाई में बदल रहे हैं। जहाँ वह अपनी सभी क्षमताएँ, संवेदनाएँ खोकर एक अपाहिज की तरह कोई भी काम करने के लिए मजबूर है। उन्हें कुछ भी करना पड़ता है। छ: घंटों के जाप के अतिरिक्त वेश्यावृत्ति, भीख या उससे भी गिरे हुए कार्य जो आश्रम की अध्यक्षा की इच्छा या घृणा पर आधारित होते हैं।''[7] इस प्रकार समझ सकते हैं कि विधवाओं को आश्रमों में किस प्रकार की यातनाएँ भुगतनी पड़ती है और उनका किस प्रकार से शोषण

होता है। इस अन्याय और अत्याचार को उजागर करने का कार्य कुसुम अंसल ने अपने उपन्यास के द्वारा किया है। उपन्यास की नायिका 'तापसी' शुरू से अंत तक यातनाओं को सहते हैं। वह पढ़ी–लिखी थी। इसके बावजूद भी उसके ऊपर विभिन्न प्रकार के अन्याय और अत्याचार किए गए। इस उपन्यास के माध्यम से कुसुमजी ने समाज के सम्मुख अनेक प्रश्न उठाएँ हैं–''विधवाओं को शोषण भगवा कपड़े पहने, शिष्य किस बेरहमीस से करते हैं?कैसे–कैसे कुकर्म यहाँ होते हैं, इसी का एक रोंगटे खड़े कर देनेवाला उपन्यास है तापसी।''8

संक्षेप में कहा जा सकता है कि तापसी उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने धार्मिक स्थानों में विधवाओं पर किस प्रकार के अन्याय–अत्याचार होते हैं, इसको रेखांकित किया है। वृंदावन के विधवा आश्रमों में विधवाओं को बहुत कठिन व्यथाओं का सामना करना पड़ता है। तापसी उपन्यास के बारे में मीरा सीकरी की यह टिप्पणी गौर करने लायक है। वे कहती–''वृंदावन की विधवाओं के जीवन को सामने लाने के लिए लिखा गया उपन्यास 'तापसी' इस भीषण सच को उद्घाटित करता है कि असहाय और पीड़ित विधवाओं के लिए बैकुंठ धाम की–सी छवि रखनेवाला यह वैकुंठ धाम आज विधवाओं के लिए कष्टभूमि बना हुआ है।''9 इस प्रकार उपन्यास में विधवाओं का जीवन चित्रित हुआ है।

संदर्भ–


1. डॉ आर.पी.भोसले, कुसम अंसल के हिन्दी साहित्य में चित्रित नारी जीवन के विविध आयाम, पृ. 63
2. कुसुम अंसल, तापसी (भूमिका) पृ. 17
3. सं.एम.फिरोज अहमद,वाङ्मय, पृ. 214
4. कुसुम अंसल, तापसी, पृ. 141
5. वही ,पृ. 141
6. सं.एम.फिरोज अहमद,वाङ्मय, पृ. 220
7. कुसुम अंसल, तापसी, पृ. 08–09
8. सं.एम.फिरोज अहमद,वाङ्मय, पृ. 220
9. सं.अनिल कुमार, कुसुम अंसल, रचनावली खंड–4 (भूमिका), पृ. 14


समीक्षा :

## हिन्दी ग़ज़ल का नया पक्ष

–राहुल शिवाय
बेगुसराय, बेगुसराय
मो. : 8240297052


वर्तमान हिन्दी साहित्य में छंदों, विचारों और सम्प्रेषणीयता की कमी से हिन्दी कविताओं के महत्व और स्तर में गिरावट आई है, उसे कहीं न कहीं हिन्दी ग़ज़लों में थामने की कोशिश की है। समकालीन हिन्दी ग़ज़लों की अभिव्यक्ति और उनकी संप्रेषणीयता हिन्दी काव्य को नये मोड़ पर ले जाने और उसका एक नया भविष्य रचने के लिए अग्रसर है। अनिरुद्ध सिन्हा जी की बात में कहें, तो हिन्दी ग़ज़ल के माध्यम से हिन्दी कविता अपनी जड़ों तक लौट रही है। आज हिन्दी में जो ग़ज़लें लिखी जा रही हैं, उनका सीधा सरोकार समकालीन आजीवन से है। भारतेन्दु से चलकर हिन्दी ग़ज़ल ने आज एक लंबा सफर तय कर लिया है। हिन्दी ग़ज़ल की परंपरा में नित नये स्वर उभर रहे हैं। नये मानक भी बन रहे हैं। इसने उर्दू ग़ज़ल में अलग साफ–साफ पहचानी बनाई है। परन्तु ऐसा नहीं है कि हिन्दी ग़ज़ल के सामर्थ्यवान ग़ज़लकारों के महत्वपूर्ण योगदान के बावजूद हिन्दी ग़ज़ल की चुनौतियाँ कम हो गयी हैं। जहाँ एक तरफ उर्दू के ग़ज़लकार, आलोचक हिन्दी ग़ज़लों को व्याकरणीय आधार पर नकारते नज़र आते हैं, वहीं समकालीन कविता के आलोचक गद्य कविता की परिधि से बाहर आना ही नहीं चाहते हैं। ऐसे में ग़ज़ल की आलोचना का उत्तरदायित्व लेते हुए अनिरुद्ध सिन्हा जी ने हिन्दी ग़ज़ल के विभिन्न पक्षों को सामने रखा है। इस पुस्तक का पहला आलेख 'हिन्दी ग़ज़ल के पचास वर्ष' हिन्दी ग़ज़ल के समय, विचारधारा और स्वीकृति के बारे में है। यहाँ हिन्दी ग़ज़ल के क्रमिक विकास और पहचान की कहानी है। इसके बाद 'आधुनिक परिवेश', 'चित्रण की प्रवृत्ति', संवेदनात्मक बदलाव की ओर हिन्दी कविता की संवेदनहीनता और ग़ज़ल की जिम्मेदारियाँ, संवाद और संदर्भ, प्रेम और कल्पना, विश्वकोषीय स्वभाव, लोकवर्णन, समकालीन हिन्दी ग़ज़ल में स्त्री सौंदर्यात्मक यथार्थ, मूल्यांकन और चुनौतियाँ, समकालीन समस्याओं की अभिव्यक्ति, परंपरा और यथार्थ का विवाद, जीवन के प्रत्यक्ष अनुभवों के बीच हिन्दी ग़ज़ल उत्तर आधुनिकता का दबाव और हिन्दी ग़ज़ल जैसे विभिन्न लेखों के माध्यम से इन्होंने ग़ज़ल के कई अनछुए पहलू पर बात की है। अनिरुद्धजी ने न सिर्फ समस्याओं/चुनौतियों की ओर इशारा किया है, बल्कि हलका मार्ग भी प्रशस्त किया है। इनकी आलोचनात्मक दृष्टि की विशेषता समुद्र से सिर्फ मोती चुनने जैसा है, घोंघे को ये छोड़ देना पसंद करते हैं। इस पुस्तक में इन्होंने मेरे प्रिय ग़ज़लकार शीर्ष के 'प्रियभानु गुप्त, महेश अग्रवाल, माधव कौशिक, अशोक मिज़ाज, ज़हरी कुरैशी, ज्ञान प्रकाश विवेक, ध्रुव गुप्त, प्रेम किरण, विजय किशोर मानव, डॉ. कृष्ण कुमार प्रजापति, लक्ष्मीशंकर बाजपेयी, विज्ञानव्रत, दरवेश भारती, हरे राम समीप, सुलतान अहमद, आलोक श्रीवास्तव, नूर मोहम्मद नूर, डॉ. भावना, गौतम रामऋषि, जैसे शायरों पर गंभीर टिप्पणियाँ की है। इन सबकी एक–एक ग़ज़ल को भी इन्होंने टिप्पणी के बाद रखा है।

इस प्रकार समकालीन ग़ज़लकारों को साथ लेकर यह पुस्तक हिन्दी ग़ज़ल के विभिन्न पद्यों को रखने में न सिर्फ सफल हुई है, बल्कि हिन्दी ग़ज़ल की पुस्तक 'हिन्दी ग़ज़ल का नया पक्ष है।

परिक्रमा प्रकाशन 2017

समीक्षा :

# प्रेमचन्द की सौंदर्य–दृष्टि

दयानन्द जायसवाल
भागलपुर–9931240303

प्रेमचन्द अपने समय में उपन्यास साहित्य के यदि एकच्छत्र सम्राट बने रहे तो कहानी के क्षेत्र में भी उनका स्थान अद्वितीय रहा। उनकी बहुतेरी कहानियाँ, कस्बाई जिंदगी, सत्याग्रह–आंदोलन, स्कूल, कॉलेज के वातावरण तथा जमींदारों, साहूकारों, क्लर्कों एवं उच्च पदाधिकारियों की समस्याओं और परिवेश की उपज है। इनकी कहानियाँ निस्संदेह हिन्दी–कहानी को एक कसौटी देने में समर्थ हैं। इनका रुझान जीवन के चारों ओर फैले ऐसे यथार्थ में था, जिसमें अनुभूति की तीव्रता थी। हिन्दी उपन्यास को अनेकमुखी बनाना प्रेमचन्द की देन है। कथा–साहित्य को 'मनोरंजन' के स्तर से उठाकर जीवन के साथ सार्थक रूप में जोड़ने का काम उन्होंने बड़ी बारीकी से किया। एक–एक कर बड़ी बेसब्री से अनेक सामाजिक समस्याओं और जीवन के विभिन्न पहलुओं को अपने उपन्यासों में स्थान दिया है। अपनी मानवीय दृष्टि के कारण देश की साम्प्रदायिक समस्या प्रेमचन्द की चिंता का मुख्य विषय था। उन्होंने सहज सामान्य मानवीय व्यापारों को मनोवैज्ञानिक स्थितियों से जोड़कर उनमें एक सहज तीव्र मानवीय रुचि पैदा कर दी। उनके उपन्यासों की तीव्र संवेदना में सामान्य जीवन की धड़कन मिलती है।

प्रेमचन्द पात्र की वैयक्तिक विशेषताओं में प्रवेश करते हुए परिस्थितियों के अनुसार उसका उत्थान पतन दिखाते हैं एवं सारा क्रिया–कलाप अत्यन्त स्वाभाविक और मानव–सुलभ हो उठता है। मनुष्य के भावों, विचारों में किस तरह छोटी–छोटी गुत्थियाँ पड़ती और सुलझती हैं, इसका चित्रण करने की इनमें अद्‌भुत क्षमता है। मानव–चरित्र में आये घात–प्रतिघात उनके उपन्यासों में भरे पड़े हैं। इनकी शब्द–चित्रण प्रतिभा एवं सूक्ष्म मनोविज्ञान, छिपा हुआ हास्य, चारित्रिक विशेषताओं पर व्यंग्य, पात्रों के अनुसार भाषा परिवर्तन 'गोदान' की बातुनी धनिया की धारा प्रवाहिकता, रोचकता एवं बातचीत की स्वाभाविकता उपन्यास और कहानियों के विशेष सौंदर्य हैं। 'कफन' के महादलितों से लेकर 'शतरंज के खिलाड़ी' के बीते युग के नबाबों तक सैकड़ों श्रेणियों के पात्रों का उनकी स्वाभाविक भाषा में बातचीत करना समाज के अद्‌भुत शान का साक्षी है। ऐसी क्षमता संसार के महत्तम साहित्यकारों में ही पायी जाती है। इनकी आंचलिक भाषा की दृढ़भूमि, कहावतें, मुहावरें एवं उपमाओं के साथ सामाजिक पैठ से ही साहित्यिक कलात्मक सौंदर्य परिलक्षित होता है।

कला व्यक्ति का उत्कृष्ट सामाजिक उपादान है। वह श्रम का एक ऐसा रूप है, जो सामाजिक मनुष्य को उसकी भौतिक अभिव्यक्ति व काल्पनिकता प्रदान करती है और इतिहास उसे विशिष्ट ऐतिहासिक विचार धारात्मक प्रतिरूप भी प्रदान करती है। व्यक्ति व समूह के धड़कनों को महसूस करनेवाले, सृजनात्मक भाव रखनेवाले, सांस्कृतिक मूल्यों को उद्‌घाटित करनेवाले, विविध बौद्धिकता से गुजरनेवाले प्रेमचन्द शोषण के विरुद्ध गहरी सौंदर्यात्मक चेतना का अस्त्र ही तो है। उन्होंने फारसी, उर्दू, हिन्दी और अंग्रेजी में महारथ हासिल कर इन भाषाओं की गहराई को समझा, उसे आत्मसात किया, जो कालान्तर में सामाजिक–धार्मिक सुधारों के रूप में अभिव्यक्त हुआ। इन्होंने महसूस किया भारत के गरीब और मेहनतकस इंसान को। उसके प्रति अपने मन में भावनात्मक लगाव विकसित किया। इससे उन्हें ग्रामीण भारत में साम्राज्यवादी शोषण के अधीन विकसित हो रहे संरचनात्मक एवं वर्गीय लक्षणों को उद्‌घाटित करने में मदद मिली। इनके लेखन में एक खास तो अवश्य है–'वो अंतर्दृष्टि अवलोकन और श्रमसाध्य अध्ययन' लेकिन नहीं है तो एक विश्व दृष्टि, समग्र वैज्ञानिक, दार्शनिक चिंतन। फिर भी उनकी साहित्यिक भूमि व्यापक है। उपन्यास, कहानियाँ, नाटक, जीवनियाँ, बच्चों की कहानियाँ, विदेशी लेखकों की रचनाओं के अनुवाद, संपादकीय, समीक्षाएँ और अनेक आलेख भी उनकी व्यापकता में शामिल हैं। इन्होंने हिन्दी भाषा को आडम्बर रहित, मर्यादित, सरल, प्रांजल एवं शक्तिशाली भाषा के रूप में एक ऊँचाई और सम्बल प्रदान किया। शोषित और दमित किसानों, काश्तकारों, दस्तकारों, बधुआ मजदूरों की बिगड़ी स्थिति और अंग्रेजी राज की आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक नीतियों की संघर्षशील निरंतरता की भूमिका निभाते रहे। इनकी कृतियाँ हमें यह बताती हैं कि शोषित, दमित ग्रामीण गरीब इंसान कैसे अप्रासंगिक व मालवाहक पशु सरीखी वस्तु न होकर एक जीवन्त मर्यादित मानवीय सत्ता है।

प्रेमचन्द के पूरे लेखन में सच्चाई और सरलता की खनक है, जो जनमानस की जिंदगी और नियति के साथ एक रचनाकार के गहरे जुड़ाव से आती है। बाहरी हुकूमत के खिलाफ चल रहे संघर्ष की रोज–रोज की गतिविधियों में उनकी दिलचस्पी ने उनके जीवन को वह समकालीनता और प्रासंगिकता दी, जिसके चलते उनके लेखन से उनके समय की एक जीवन्त, सुस्पष्ट और व्यापक तस्वीर उभरती है। सामाजिक न्याय और नैतिकता के सवालों के साथ उनका जुड़ाव ही उन्हें जीवन यथार्थ के अत्यधिक निकट कर दिया था। हमारे पास वो लेखनी नहीं है, जो गरीब और भूख, निरक्षरता, औरत की निम्न स्थिति, जात्याभिमान, ग्रामीण कर्जेदारी, अस्पृश्यता और साम्प्रदायिक मतान्धता की समस्याओं को उठा सके। यह आज भी हमारे सामाजिक और राजनीतिक जीवन को विकृत कर रही है। ईमानदारी, उदारता, सहिष्णुता, परोपकारिता और आत्मसम्मान का दृढ़तापूर्वक रख– रखाव करने के गुण प्रेमचन्द के कुछ हजार शब्दों की छोटी कहानियों में स्पष्टतः प्रकट हो जाते हैं। 'मंत्र' में एक गरीब बूढ़े के सात में से छः लड़के मर गये। रोगग्रस्त होने से अंतिम लड़के की भी जान खतरे में थी। बूढ़ा उसको डॉक्टर साहब के पास ले गया तो वह गोल्फ खेलने जा रहे थे और उन्होंने लड़के की ओर एक निगाह भी न डाली। लड़का उसी रात मर गया। कई साल बीतने पर एक दिन डॉक्टर साहब के इकलौते लड़के को जहरीले साँप ने काट लिया। वह गरीब बूढ़ा साँप के काटने से बचाने का मंत्र जानता था। डॉ. से दुश्मनी और बदले की भावना रहने के बाद भी वह दौड़ते हुए डॉक्टर साहब के घर गया और उनके लड़के की जान बचाई। यहाँ लेखक का कला–कौशल देख सकते हैं कि वे दरिद्रजनों में भी सौंदर्य–स्वरूप ढूँढ़ लेते हैं। 'ठाकुर का कुआँ' एक काफी छोटी कहानी है, लेकिन यहाँ भी सामान्य नियति का सामना करते जोखू और उसकी पत्नी गंगी दोनों हैं, जो संपूर्ण प्रकृति के अतर्संबंधों से लेकर अंतर्विरोधियों की पूरी दुनिया है। एक ओर बीमार जोखू और उसकी पत्नी गंगी तो दूसरी ओर सामन्ती व्यवस्था के प्रतीक ठाकुर का कुआँ है, जिसके संरक्षक स्वयं ठाकुर साहब हैं, पुनः कुएँ पर बैठी हुई गंगी से होकर गुजरते प्रेमचंद के विचार हैं तो दूसरी ओर जोखू के सामने उसकी नियति है।

प्रेमचंद की कहानियों की लोकप्रियता का एक बहुत बड़ा कारण उनकी कथा कहने की पद्धति भी है। स्वयं कुलीन कायस्थ होते हुए भी कुलीनता की झूठी शान, जमींदार ब्राह्मणों का खोखला बड़प्पन तोड़ ही नहीं दिया, बल्कि

इससे ऊपर उठकर साहित्य में नायक या नायिका के सिंहासन पर होरी, घीसू, हल्कू, धनिया, सलोनी, काकी आदि को प्रतिष्ठित किया। इन्होंने उनकी दुर्बलताओं में सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव पहचाना था। इनकी सूक्ष्म दृष्टि दुर्बलों, निर्धनों में मानव हृदय को देखा था।'रंगभूमि'में वर्णित पांडेपुर की बस्ती और उस बस्ती का बजरंगी नानकराम पंडा आपको विविध रूपों के साथ देश में कहीं भी देखने को मिल जायेंगे। जोगी, जती, पीर, भूत और भभूत की कहानियाँ, भाई जी, बहनजी, महाशयजी आदि के चित्र साहित्य में प्रेमचंद ने हमें दी। इनके चरित्र की सरलता ही उनके शिल्प की शक्ति थी। ये लोकमानस के ही मात्र अनोखे पारखी नहीं थे, वरन पशुओं के मानस को भी ममता की उसी ओर के सहारे उतारने में वह पूर्ण रूपेण समर्थ थे। उनके विचारपक्ष और कलापक्ष में शुरू से ही अन्योन्याश्रित भाव एवं अंतरंग संबंध था। आपको याद होगा–मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती', सुभद्रा कुमारी चौहान की 'झाँसी की रानी', देवकीनंदन खत्री की 'चन्द्रकान्ता संतति' और प्रेमचन्द की 'रंगभूमि', 'प्रेमाश्रम', 'सेवासदन' एवं अनेक कहानियाँ भारत की आजादी–आंदोलन के समय ग्रामीण जनों के बीच एक व्यक्ति के द्वारा पढ़ी जाती थी और सब उसे सुनते थे, यह प्रेमचन्द की सफलता थी। जिहाद, जुलूस, समर यात्रा और जेल आदि में साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के विरुद्ध राष्ट्रीय क्रांतिकारी आंदोलन के चित्रण में व्यापक देशप्रेम की भावना व्यक्त की गई है।

प्रेमचन्द की कहानियाँ पढ़ते हुए भारतवासियों का विशाल जीवनफलक हमारे सामने घूमने लगता है और पढ़कर दिल धड़कने लगता है। सद्गति, कफन, सवा सेर गेहूँ, विध्वंस, गरीब की राय, मंदिर और ठाकुर का कुआँ आदि कहानियों में सामन्तवाद की भर्त्सना, उनके सुखों–दुखों, आशाओं, निराशाओं, चालाकियों, धांधलियों, कल्पनाओं, कामनाओं और निडरता आदि को व्यक्त करते हुए अनेक अन्य विषय को छुए हैं। नैराश्य लीला, शान्ति, बेटोंवाली विधवा, बूढ़ी काकी, कुसुम और नया विवाह में महिलाओ की कारुणिक जिंदगी मार्मिक अनुभूति के साथ प्रकट की गई है। सभ्यता का रहस्य, एक आँच की कसर, त्यागी का प्रेम, सत्याग्रह, स्वांग और सत्याग्रह के खिलाड़ी में धार्मिक पाखंडों का पर्दाफाश किया गया है। प्रेमचंद ने विशाल जीवनचित्र बनाकर अनेक ऊँचे विचारोंवाले प्रभावशाली पात्रों का सृजन किया है। इसके सृजन में आदर्श कथा–वस्तुओं का सहारा लिया, पर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण की अवहेलना भी नहीं की। यह यथार्थपूर्ण तथा मर्मस्पर्शी वर्णन इनकी सूक्ष्म दृष्टि का सौंदर्य स्वरूप है। लेखक किसी कहानी में जीवन का एक पहलू या चरित्र का एक अंग ही दिखा सकता है, पर प्रेमचन्द 'कफन' कहानी में वर्णित बाप–बेटे दोनों अपने आलस्य और लालच के लिए बेहद बदनाम थे। बेटे की जवान पत्नी प्रसववेदना से कराह–कराहकर मर रही थी, पर बाप और बेटे दोनों में से किसी ने भी उसकी ओर एक नजर न डाली। दोनों अलाव के सामने बैठकर किसी के खेत से खोद लाये हुए आलू भून–भानकर खाते रहे। गाँववालों ने कुछ पैसे जमा करके उन्हें कफन के लिए पैसे दिये, पर बाप बेटे ने कफन खरीदने के बजाय शराबखाने में जाकर अपनी भूख मिटायी। प्रश्न उठता है कि ये दोनों इतने जड़ और अमानुषिक क्यों थे?इनके प्रति सहानुभूति प्रकट करें या रोष?प्रेमचन्द ने दो किस्मों के इन पात्रों के चरित्र चित्रण से मनुष्य के स्वरूप को देखने समझने में अपनी असाधारण क्षमता और कलात्मक सृजन में अपनी निपुणता दिखाई है। इनके जैसा एक व्यापक सामाजिक जीवन का रचनाकार उनके बाद के साहित्य में नहीं लक्षित होता है।

उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द को समीक्षकों, समालोचकों ने अपनी विवेक की कसौटी पर जाँचने और परखने के बाद कहा–''ये साहित्य में प्रतिस्पर्द्धी भाव से नहीं आये और अपने रचनाकाल के अंत तक कभी उन्होंने अपने कर्म को इस दृष्टि से नहीं देखा।'' अपनी अंतिम बीमारी के दौरान भी ये इसी पक्ष पर बल देते रहे कि साहित्यकार समाजसेवी होता है और साहित्यकर्म मूलतः उसकी साधना होती है।'अज्ञेय' ने कहा है–''जो साहित्यकार विपरीत परिस्थितियों में पूरे समाज को जाग्रत आत्मा का काम करता है, वह उससे अच्छा है, बड़ा और अधिक विकासशील है, जो कि अपने को एक योद्धा के रूप में न देखता है। योद्धा पिछड़ जाता है, लेकिन जाग्रत आत्मा कभी नहीं पिछड़ती।'' उन्होंने मानवीय संवेदना का विस्तार किया और अन्याय का विरोध करते हुए भी उस संवेदना का दायरा समय के साथ संकुचित नहीं होने दिया। प्रेमचन्द ने तो काव्यसौंदर्य की भावना को सजग करने की बात कही है। दिमागी ऐयाशी रीतिकालीन नायिका–भेद, प्रेयसी के नख–शिख का वर्णन, नंगी कामुकता और निर्लज्ज रतिवर्णन की जोरदार भर्त्सना की है। उनकी टिप्पणी है–''जो हमारी करुण भावनाओं को उत्तेजित करता है, हमारी मानवता को जगता है, इसी में साहित्य की उपयोगिता है, मगर हम तो कवि की सभी अनुभूतियों के कायल हो जाते हैं। हमें देखना होगा कि उनकी रचना किन भावों से प्रेरित होकर रची गई है। अगर उससे हमारे मनोभावों का परिष्कार होता है, हममें सौंदर्य की भावना सजग होती है, तो उसकी रचना ठीक होती है, वरना गलत। साहित्य वही चिरायु हो सकता है, जो मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों पर अवलंबित हो।'' दिसम्बर 1933 के 'हंस' संपादकीय के उत्तरार्ध में लिखा है–''प्राचीन साहित्यधर्म और ईश्वर–द्रोहियों के प्रति घृणा और उनके अनुयायियों के प्रति श्रद्धा एवं भक्ति के भावों की सृष्टि करता रहा। नवीन साहित्य समाज का खून चूसनेवालों, रंगे सियारों, हथकंडेबाजों और लोगों की अज्ञानता से अपने स्वार्थ सिद्ध करनेवालों के विरुद्ध जोर से आवाज उठ रही है तथा दीनों, दलितों, अन्याय के हाथ सताये हुओं के प्रति उतनी ही जोर से सहानुभूति उत्पन्न करने का प्रयत्न कर रहा है।

प्रेमचन्द मानव स्वभाव के पारखी थे, इसलिए विविध छवियों एवं विकल्पों का चित्रण उनकी कलात्मक ऊँचाई का द्योतक माना जाता है। उनकी कहानी का अंत या समाधान कहानी का कथ्य नहीं होता, बल्कि विपरीत मनोभावों का चित्रण, घटनाओं के अतिनाटकीय चित्रण एवं उसके शिल्प में आये 'आत्म विवेक' ही कथ्य होता है, जो समानता तथा प्रगति के प्रति पाठकों को संस्कारित करता है। उन्होंने इस तथ्य का वर्णन किया कि मनुष्य का चरित्र कोई स्थिर वस्तु नहीं,संगति और संपर्क से उसमें परिवर्तन होता रहता है। इनके शैक्षिक विचार इनके जीवन और साहित्य में यत्र–तत्र बिखरे हुए हैं। जीवन और विश्व के बारे में इनके आधारभूत विचार थे। इनकी कला का धरातल यही विचार दर्शन है। इनकी कलाशक्ति के पीछे यह उद्दाम लालसा है कि अपनी लेखनी के महान बल से वे जनजीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाए।

'सेवासदन' में उस भयंकर सामाजिक दोष का चित्रण किया गया है, जिससे विवश होकर हमारी कुल कन्याएँ और कुल वधुएँ वेश्या बन जाती हैं। 'प्रेमाश्रम' में एक ओर भारतीय किसान की निर्धनता और विवशता तथा दूसरी ओर विधवाओं की समस्या दिखाई गई है।'निर्मला' वृद्ध विवाह और दहेज प्रथा के दुष्परिणामों का भंडाफोड़ करता है।'गबन' में स्त्रियों का आभूषण–प्रेम, हरी–भरी गृहस्थी को किस प्रकार ध्वस्त कर देता है?इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इनकी सूक्ष्म दृष्टि महलों से लेकर झोपड़ियों तक, खेतों और खलिहानों से लेकर बड़ी–बड़ी मीलों तक समान रूप से पड़ी।

प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा साहित्य को मनोरंजन के स्तर से ऊपर उठाकर जीवन के साथ जोड़ने का काम किया। ये जीवन की समग्रता के उपन्यासकार थे। इनकी प्रतिभा परिग्राही थी परिवर्जक नहीं। इन्होंने जीवन के श्वेतपक्ष के साथ–साथ श्यामपक्ष को भी अपने उपन्यासों के लिए लेखन का विषय बनाया। इन्हें आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी उपन्यासकार कहा गया है। मानवता को सामाजिकता के विस्तृत फलक पर चित्रित करने का प्रयास प्रेमचन्द के पूर्व किसी भी साहित्यकार ने नहीं कर पाया था। ये समाज का अंग

बनकर जिये। समाज से हटकर साहित्य का कोई अर्थ उनके लिए नहीं था। साहित्य का उत्तरदायित्व सामाजिक परिवर्तन के लिए होता है– इस बात को वे बहुत गहरे अर्थबोध के साथ महसूस करते थे। संस्कृति और परंपराओं के प्रति अंध–आस्था के पक्षधर नहीं थे। वे कहते हैं–''हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा, जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौंदर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो–जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे। सुलाये नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।'' 'सेवासदन' प्रेमचंद का नारी–समस्या विशेषकर वेश्या उद्धार को लेकर लिखा गया उपन्यास है। 'प्रेमाश्रम' में आगे बढ़कर राष्ट्रीय समस्या को अपने उपन्यास का विषय बनाया है। किसानों के शोषण का जितना नंगा चित्र प्रेमचंद ने इसमें प्रस्तुत किया है, उतना किसी उपन्यास में नहीं है। 'रंगभूमि' प्रेमचन्द का बृहदाकार उपन्यास में स्वच्छंद प्रेम और बलिदान का चित्रण सफलतापूर्वक किया गया है। सूरदास 'रंगभूमि' का नायक है, प्रेमचंद को इसके सृजन की प्रेरणा गाँव के अंधे भिखारी से मिली थी। नायक के अबतक के सारे प्रतिमान उस तक आते–आते कंकाल हो जाते हैं। फिर भी वह नायक है। एक अंधा भिखारी अकेला पूरी व्यवस्था से लड़ने का साहस रखता है। जीवन के अन्तिम क्षण तक अपने आदर्शों के बिना रती भर भी डिगे हजारों लोगों का नेतृत्व करता है। यह उपन्यास प्रेमचंद के विचारों की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति है। 'कर्मभूमि' एक प्रमुख सामाजिक उपन्यास है, इसमें प्रेमचंद की उपन्यास कला के वैशिष्ट्य का दर्शन होता है। यह देशानुराग, समाजसुधार, अछूतोद्धार, शिक्षा गरीबों की समस्या, जन–जागृति आदि की ओर संकेत करता है। इनकी रचना कौशल इस तथ्य में है कि उन्होंने इन समस्याओं का चित्रण सत्यानुभूति से प्रेरित होकर किया है।

प्रेमचन्द द्रष्टा थे। अपने समय की स्थिति में उन्होंने भविष्य का इतिहास देखा। उन्होंने उस समय के आदमी की व्यथा कथा लिखी। इसलिए प्रेमचन्द की अभिव्यक्ति इतिहास की विराट गहन अभिव्यक्ति है। उनका सामयिक चित्र युग–युग के मानवीय सत्यों का प्रतिबिम्ब है। इनकी गहन दृष्टि ने जीवन को हर रूप में देखा और जीवन की गुत्थियो को सुलझाने का प्रयत्न भी किया। ये हिन्दी कथा–साहित्य को एक नया मोड़ प्रदान किया तथा अपनी कृतियों से साहित्यकारों को प्रेरणा भी दी। इन्होंने ही सर्वप्रथम चित्रणीय विषय के अनुरूप शिल्प के विषय का प्रयोग हिन्दी उपन्यास में किया। उनके द्वारा प्रस्तुत किये गये दृश्य अत्यन्त सजीव, गतिमान और नाटकीय है। शिल्प और भाषा की दृष्टि से उन्होंने हिन्दी उपन्यास को विशिष्ट स्तर प्रदान किया है। भाषा के सटीक,सार्थक और व्यंजनापूर्ण प्रयोग में वे अपने समकालीन ही नहीं, बाद के उपन्यासकारों को भी पीछे छोड़ जाते हैं।

## अशोक अंजुम की चार ग़ज़लें

अशोक अंजुम
अलीगढ़,
मो 9258779744

कि होने दीजिए होता है जो नुकसान थोड़ा–सा
बचा रह जाय दुनिया में अगर इन्सान थोड़ा–सा
सरल रस्तों से सस्ती मंजिलें ही हाथ आती हैं
सफर मुश्किल भरा बेहतर रहे आसान थोड़ा–सा
लचक थोड़ी अगर रखता तो मुमकिन था कि बच जाता
तेरे जीवन में आया था फ़क़त तूफान थोड़ा–सा
बचा रखना अँधेरों में बहुत ही काम आएँगे
तेरा अखलाक थोड़ा–सा तेरा ईमान थोड़ा–सा
ये भागमभाग कैसी है सुबह से रात तक अंजुम
अगर फुरसत मिले खुद को कभी पहचान थोड़ा–सा
।।2।।

वफाएँ लड़खड़ाती हैं भरोसा टूट जाता है
जरा–सी भूल से रिश्तों का धागा टूट जाता है
सलाखें देखकर घबरा रहा है तू परिन्दे क्यों
अगर शिद्दत से हो कोशिश तो पिंजरा टूट जाता है
परिन्दे वे कभी ऊँची उड़ाने भर नहीं सकते
जरा–सी धूप से जिनका इरादा टूट जाता है
हया आँखों की मर जाए तो घूँघट की जरूरत क्या
हया मर जाए तो हर एक परदा टूट जाता है
यकीं रखना तुम्हारी कोशिशें ही काम आएँगी
कि कोशिश रंग लाती हैं कि वादा टूट जाता है
लचक रहती है जिन पेड़ों में लंबी उम्र जीते हैं
अड़ा रहने पे तूफानों में क्या क्या टूट जाता है।
।।3।।

बात बिगड़ी, ऐसी बिगड़ी कि बनाते न बनी
जिन्दगी रूठी यूँ रूठी कि मनाते न बनी
लोग सारे ही लतीफों के तलबगार मिले
गीत गाते न बनी शेर सुनाते न बनी
एक चिनगारी उठी उठके बन गई शोला
आग फिर ऐसी लगी हमसे बुझाते न बनी
संगदिल वक्त ने की दिल्लगी यूँ शामो–सहर
दूर जाते न बनी सिर को बचाते न बनी
हमने कुछ इस तरह से कर लिये करार कभी
बोझ काँधों पे लदे और उठाते न बनी।
।।4।।

बरसना था नहीं बरसे जो फिर बरसे तो क्या बरसे
बहुत प्यासी है ये धरती कोई बादल जरा बरसे
मैं अच्छा हूँ बुरा हूँ जो भी हूँ मुझको नहीं मालूम
मगर इक घाव में पाऊँ तो दुनिया से दुआ बरसे
जरा हँस–बोलना उनसे ये क्या तूफान ले आया
धुआँ उठा कि शोले चारसू बेइम्तिहा बरसे
घटा पहले भी घिरती थीं, लरज़ती थीं, बरसती थीं
जो अबकी बार तुम हो तो ये बादल कुछ जुदा बरसे
खिले हैं फूल घर–आँगन का हर कोना महकता है
ये होता है तभी जब बुजुर्गों का तजरुबा बरसे।

# होली रे होली तेरे रंग कितने

–आकांक्षा यादव,
जोधपुर, राजस्थान,
मो.–09413666599

दुनिया विभिन्न रंगों से भरी पड़ी है। रंगों के बिना कोई भी सौंदर्य अधूरा लगता है। तभी तो हमारी परंपरा के रंगों का त्योहार समाहित किया गया है। संभवतः मानव ने जब रंगों को पहचानना आरंभ किया, उसके उत्सवी रूप को भी तभी रंग दिया। इतिहास में झाँककर देखें तो प्राचीन भारत में आर्यों के समय भी होली मनायी जाती थी। विंध्य क्षेत्र के रामगढ़ स्थान से प्राप्त ईसा से ३०० वर्ष पूर्व एक अभिलेख में भी होली मनाये जाने का उल्लेख मिलता है। प्राचीन ग्रंथों जैमिनी के पूर्व मीमांसा–सूत्र और कथागार्हा–सूत्र में पूर्वी भारत में होली मनाने का उल्लेख तो नारद पुराण और भविष्य पुराण में भी होली का वर्णन मिलता है। यहाँ तक कि भारत की यात्रा पर आये सुप्रसिद्ध पर्यटक अलबरुनी ने अपने ऐतिहासिक यात्रा संस्मरण में होली मनाने का उल्लेख किया है।

इतिहास के विभिन्न कालखंडों में भिन्न–भिन्न शासकों ने सत्ता संभाली, लेकिन होली का रंग यूँ ही बना रहा। मुगल काल में अकबर का अपनी पत्नी जोधाबाई के साथ तथा जहाँगीर का नूरजहाँ के साथ होली खेलने का वर्णन मिलता है। शाहजहाँ के समय होली को ईद–ए–गुलाबी या आब–ए–पाशी रंगों की बौछार कहा जाता था। इसमें दोनों धर्मों के लोग शामिल होते थे। 16वीं शताब्दी के एक चित्र में विजयनगर की राजधानी हम्पी में राजकुमारों और राजकुमारियों को रंग एवं पिचकारी के साथ होली खेलते दिखाया गया है। सूफी संत निजामुद्दीन औलिया और अमीर खुसरो को भी होली का त्योहार बहुत पसंद था। वास्तव में देखें तो सूफी संत हजरत निजामुद्दीन औलिया, अमीर खुसरो से लेकर बहादुरशाह जफर और नजीर अकबरावादी की रचनाएँ होली की खिलंदड़ी, उसके अध्यात्म, उसकी सूफियाना मस्ती और उसके विहंगम सामाजिक फैलाव के बारे में बताती है। होली हमारे सामाजिक ताने बाने को सहेजता है। होली के इन रंगो में सिर्फ इंद्रधनुषी रंग ही नहीं देश का सांस्कृतिक वैविध्य भी घुला मिला है।

होली बसंत की विदाई और फागुन के आगमन का सूचक है। फाल्गुन आते ही फाल्गुनी हवा मौसम के बदलने का एहसास करा देती है। कँपकँपाती ठंढ से राहत लेकर आनेवाला फाल्गुन मास लोगों के बीच एक नया सुख का एहसास कराता है। सरसों के पीले फूल, गेहूँ की बालियाँ, पलाश की लालिमा, टेसू, चैती गुलाब, चंपा–चमेली, कचनार की कली, भांग, बूटी और इन सबके बीच खेतों में गूँजते किसानों के गीत सब मिलकर फगुनाहट में होली को रोचक और रंगीला वितान प्रदान करते हैं। उम्र की सीमाओं से परे जाति, धर्म और संप्रदाय के बंधनों को खोलता यह त्योहार समाज में संस्कृतियों और संस्कारों की मिली जुली रंगतें भी पेश करता है। विविधता हमारे देश की पहचान है। जैसे होली के भिन्न–भिन्न रंग हैं, वैसे ही देश के विभिन्न भागों में इसे मनाने का अंदाज भी अलग–अलग है। तभी तो रघुवीर सहाय इसे 'एक अद्वितीय सामाजिक मौसम' की उपमा देते हैं।

जितना बड़ा देश, उतने ही होली के सांस्कृतिक रंग। मनाने के तरीके अलग हो सकते हैं, पर सद्भाव ही है। ब्रज की होली जगप्रसिद्ध है। यहाँ बरसाने और नंदगाँव में लट्ठमार होली मनायी जाती है, जिसमें महिलाएँ पुरुषों का लाठियों से स्वागत करती हैं। इसी प्रकार मालवा में होली के दिन लोग एक दूसरे पर अंगारे फेंकते हैं। वे मानते हैं कि इससे होलिका राक्षसी का अंत हो जाता है। राजस्थान के बाड़मेर में पत्थरमार होली खेली जाती है, तो अजमेर में कोड़ा अथवा सामंतमार होली का रिवाज है। पश्चिम बंगाल में होली ढोल जातरा या ढोल पूर्णिमा के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें राधा–कृष्ण की पालकी घुमायी जाती है। राजस्थान, मध्यप्रदेश व गुजरात के कुछ आदिवासी इलाकों में होली खेलकर जीवन साथी चुनने की भी परंपरा है। बिहार और पूर्वांचल में होलिका दहन के दिन घर के सदस्यों को सरसों का उबटन लगाया जाता है, वहीं बिहार में होली के दिन विशेष पकवान–मालपुआ और उ.प्र. के पश्चिमी क्षेत्रों में गुझिया बनाने का प्रचलन है। सिक्खों के दशम गुरु गोविंद सिंहजी ने होली को 'होला महल्ला' कहा। पंजाब और हरियाणा में इसे होला महल्ला के रूप में मनाते हैं, जिसमें लोग घोड़े पर सवार निहंग, हाथ में निशान उठाए तलवारों के करतब दिखाकर साहस का प्रदर्शन करते हैं। सुदूर पूर्वोत्तर भारत के मणिपुर में होली को याओसांग और धुलैडी वाले दिन को पिचकारी कहा जाता है। याओसांग वह छोटी सी झोंपड़ी होती है, जिसमें चैतन्य महाप्रभु की प्रतिमा स्थापित की जाती है। पिचकारी के दिन रंग गुलाल अबीर से वातावरण रंगीन हो उठता है और जमकर खुशियाँ मनाते है। सब मानो कहीं–न–कहीं अपनी वैविध्यता के बीच उत्सवी परंपराओं के एक साथ सहेजते हैं।

सिर्फ भारत ही नहीं, बल्कि दुनियाभर के रंगों का त्योहार किसी न किसी रूप में मनाया जाता है। सूरीनाम, फिजी, मॉरीशस, गुयाना, उत्तरी अमेरिका, ब्रिटेन में रहनेवाले भारतीय हर्ष और उल्लास के साथ होली मनाते हैं। नेपाल, पाकिस्तान, बांग्लादेश, श्रीलंका ओर मॉरीशस में भारतीय परंपरा के अनुरूप ही होली मनायी जाती है। पॉलैंड में आर्सिना पर्व में लोग एक–दूसरे पर रंग और गुलाल मलते हैं। ये रंग फूलों से बने होने के कारण त्वचा को नुकसान नहीं पहुँचाते। हॉलैंड का कार्निवाल होली की मस्ती से भरपूर है, तो बेल्जियम की होली भारत जैसी होती है। थाइलैंड में भी सौंगक्रान नाम के पर्व में वृद्धजन इत्र मिश्रित जल डालकर महिलाओं, बच्चों और युवाओं को आशीर्वाद देते हैं। इसी प्रकार चे और स्लोवाकिया में बोलिया कोनेन्स त्योहार पर युवक–युवतियाँ एक दूसरे पर पानी एवं इत्र डालते हैं। अमेरिका में मेडफो नामक पर्व में लोग गोबर तथा कीचड़ से गोले बनाकर एक दूसरे पर फेंकते हैं, तो स्पेन में लोग एक दूसरे को टमाटर मारकर होली खेलते है। फ्रांस में यह पर्व 19 मार्च को डिबोडिबी के नाम से मनाया जाता है। अफ्रीका में ओमेना वोंगा के नाम से होली जैसा पर्व मनाया जाता है। रोम में इसे सेंटरनेविया कहते हैं तो यूनान में मेपोल। ग्रीस का लव ऐपल होली भी प्रसिद्ध है। जापान में टेमोंजी ओकुरिबी नामक पर्व पर आग लगायी जाती है। जर्मनी में ईस्टर के दिन घास का पुतला जलाया जाता है और लोग एक दूसरे पर रंग डालते हैं। हंगरी का इस्टर होली के अनुरूप ही है। मिश्र में रात में जंगल में आग जलाकर यह पर्व मनाया जाता है, जिसमें लोग अपने पूर्वजों को याद करते हैं। इटली में रेडिका त्योहार में चौराहों पर लकड़ियों के ढेर जलाये जाते हैं और एक दूसरे को गुलाल लगाते हैं।

कवियों ने होली को अपने शब्दों में खूब भिगोया है। साहित्य के तमाम पन्ने होली के गीतों से भरे पड़े हैं। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी रचना ऋतुरंगशाला में एक जगह इसे आध्यात्मिक स्वरूप देते हुए लिखा भी है कि 'यह दोल (फाल्गुनी पूर्णिमा) पाने और न पाने की एक अजीब–सी विवशता के बीच झुलाता है। एक ओर मिलनोत्सव है, तो दूसरी ओर विरह और

विलगाव। इन दोनों को छू–पाकर ही तो विश्व का हृदय दोल (झूला) झूल रहा है।' भगवान कृष्ण को होली का त्योहार बहुत प्रिय था। गोपियों संग रासलीला के दौरान होली के रंग उन्होंने खूब उड़ेले। कृष्ण–भक्त मीराबाई ने अपने आराध्य को होली पर्व पर याद करती है–

पफागण के दिन चार, होली खेल मना रे ।।
बिन करताल पखावज बाजै, अणहद की झनकार रे ।।
बिनु सुर राग छतीसूँ गावै, रोम–रोम रणकार रे ।।
सील संतोख की केसर घोली, प्रेम प्रीत पिचकार रे ।।
उड़त गुलाल लाल भयो अंबर, बरसत रंग अपार रे ।।
घट के सब पट खोल दिये हैं, लोक लाज सब डार रे ।।
होरी खेल पीव घर आये, सोई प्यारी पिय प्यार रे ।।
'मीराँ' के प्रभु गिरध्र नागर, चरण कमल बलिहार रे ।।

फागुन में जब प्रकृति अपने पूर बशाव पर होती है, तो कवि मन भला कैसे अपने को नायिका के सौंदर्य में डुबाये बिना होली खेले। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की पंक्तियाँ याद आती हैं–

जागी रात सेज प्रिय पति संग रति सनेह–रंग घोली
दीपित दीप, कंज छवि मंजु–मंजु हंस खोली
मली मुख–चुम्बन–रोली
प्रिय–कर–कठिन–उरोज–परस कस कसक मसक गई चोली
एक–वसन रह गई मंद हंस अधर दशन अनबोली
कली सी कांटे की तोली
मधु–ऋतु–रात, मधुर अधरों की पी मधु सुध बुध खो ली
खुले अलक, मुंद गए पलक–दल, श्रम–सुख की हद हो ली
बनी रति की छवि भोली।

होली के अल्हड़पन और मस्ती की नजीर अकबराबादी ने बखूबी अभिव्यक्त किया है–

जब फागुन के रंग झमकते हों तब
दो बहारें होली की
मुँह लाल गुलाबी आँखें
हाथों में पिचकारी हो
उस रंग भरी पिचकारी को
अंगिया पर तक कर मारी हो
सीनों से रंग ढलकते हों तब
देख बहारें होली की।

कविता

## मुक्तक

संजय कुमार गिरि
कर्तारनगर, दिल्ली
मो. 9871021856

तुम्हारी गुनगुनाहट से मधुर आभास होता है
लगे साजन हमारा ही हमारे पास होता है
महकता ही रहे गुलशन बहारों से सदा तेरा
दिलों में हर किसी के एक चेहरा खास होता है
कलम बिकती नहीं है ये सभी में जोर लाएगी
चले बदलाव की आँधी खुशी चहुँ ओर छाएगी
नहीं डरता किसी से भी सदा जो साथ चलता है
लिखे जो सच उसी का ही यहाँ पर टोर लाएगी।

ग़ज़ल

सूरत बदल गई कभी सीरत बदल गई
इंसान की तो सारी हक़ीकत बदल गई
पैसे अभी तो आए नहीं पास आपके
ये क्या अभी से आप की नीयत बदल गई
मंदिर को छोड़ मयक़दे जाने लगे हैं लोग
इंसा की अब तो तर्ज़ इबादत बदल गई
खाना नहीं गरीब को भरपेट मिल रहा
कैसे गेहूँ गरीब की हालत बदल गई
नफ़रत का राज अब तो हर सू दिखाई दे
पहले थी जो दिलों में मुहब्बत बदल गई
देता न था ज़वाब जो मेरे सलाम का
वो हंस के क्या मिला मेरी किस्मत बदल गई।

## तू

विजय कुमार सप्पति, सैनिकपुरी, तेलंगाना

मेरी दुनिया में जब मैं खामोश रहती हूँ
तो
मैं अक्सर सोचती हूँ
कि
खुदा ने मे रे ख्वाबों को छोटा क्यों बनाया
एक ख्वाब की करबट बदलती हूँ तो
तेरी मुस्कुराती हुई आँखें नजर आती है
तेरी होठों की शरारत याद आती है
तेरे बाजुओं की पनाह पुकारती है
तेरी नाख़तम बातों की गूँज सुनाई देती है
तेरी बेपनाह मोहब्बत याद आती है
तेरी क़समें तेरी वादें तेरी सपने तेरी हकीकत
तेरे ज़िस्म की खुशबू तेरा आना तेरा जाना
अल्लाह कितनी यादें हैं तेरी
दूसरे ख्वाब की करवट बदली तो तू यहाँ नहीं था
तू कहाँ चला गया
खुदा या
ये आज कौन पराया मेरे पास है।

संस्मरण

# शेरू

आचार्य बलवन्त
हिन्दी विभागाध्यक्ष
बेंगलूर, मो0 9844558064

भगवान सच्चिदानंद शिक्षण संस्थान गृह विज्ञान की प्रैक्टिकल परीक्षा थी। छात्राएँ अपनी सुरुचि का व्यंजन बनाने में लगी थी। कोई पूड़ी बनाने के लिए आटा गूँथ रही थी, तो कोई खीर के लिए दूध गरम कर रही थी। दो छात्राएँ पास के हैंडपंप से पानी ला रही थीं। जिसे जो काम दिया गया था, उसे वह बखूबी निभा रही थी। तभी कहीं से एक अत्यन्त कृशकाय श्वान वहाँ आ पहुँचा। बाद में आये हुए स्वजातीय बंधु–बांधवों पर उसे गुर्राते हुए देखकर ऐसा लगता था, जैसे किसी अन्य का वहाँ रहना उसे बिल्कुल भी पसंद न हो। मेरे मुँह से 'शेरू' शब्द सुनकर वह चौंक पड़ा, फिर भौंकने लगा। अन्य कुत्ते उसकी चुनौती भांपकर भाग खड़े हुए। भोजन करने के पहले मैं कुछ पूड़ियाँ उसे परोस दी थीं। खाने पर वह इस तरह टूट पड़ा था, जैसे कई दिनों से कुछ खाया ही न हो। फिर वह अपनी टाँगें पसारकर निश्चिन्त भाव से सो गया। परीक्षा सम्पन्न होने के उपरांत छात्राएँ अपने घर चली गयीं। उनके जाने के बाद मैं विद्यालय की दूसरी मंजिल पर बने कमरे में गया और सीढ़ी पर लगे दरवाजे को अंदर से बंद कर दिया।

दूसरे दिन सुबह जब मैं सीढ़ियों से नीचे उतरा, अचानक शेरू को उसके पिछले दो पैरों पर खड़ा पाकर मैंने उसके सिर पर हाथ रख दिया। स्नेहिल स्पर्श पाकर वह अपनी पूँछ हिलाने लगा। सुबह–शाम जब मैं कहीं जाता, तो वह भी मेरे साथ हो लेता। स्वामी आनंद बल्लभ का घर वहाँ से एक किलोमीटर की दूरी पर गाँव में है। एक दिन जब मैंने उनके घर जाने का मन बनाया, शेरू भी मेरे पीछे हो लिया। घर पहुँचने पर उनकी पत्नी ने उसे दूधभात मिलाकर एक कटोरी में दिया और मेरी सहमति से उसे एक रस्सी से बाँध दिया। रस्सी से बाँधकर रखने का निर्णय इसलिए लिया गया था, ताकि सड़क पर गाड़ी–मोटर की चपेट में आने की आशंका से उसे दूर रखा जा सके। खाना खाने के बाद रात में मैं विद्यालय लौट आया। दूसरे दिन सुबह मैंने उसे फिर उसी स्थिति में सामने पाया। 'क्यों रे शेरू, आ गया तूँ?' उसने अपने पैर के दोनों पंजे मेरी ओर बढ़ा दिये। शाम को स्वामीजी से पता चला कि मेरे आने के बाद उसने रस्सियाँ काट दी थी और स्वयं को मुक्त कर लिया था।

उनकी बड़ी बेटी विद्यावती आठवीं में पढ़ती थी। विद्यालय की छुट्टी होने पर जब वह घर के लिए चलती, शेरू भी उसका साथ पकड़ लेता। घर जाते समय वह उसके पीछे–पीछे और विद्यालय आते समय हमेशा आगे। उसे दो साथी और मिल गये थे। एक नन्हीं कुतिया, जिसे संभवतः किसी ने कुछ दिनों पूर्व कहीं से लाकर विद्यालय के सामने छोड़ दिया था, जो विद्यालय के आस–पास ही रहा करती थी, दूसरा विद्यावती का छोटा भाई रवि।

समय अपनी गति के साथ चल रहा था। शेरू अब स्वामीजी के घर–परिवार का हिस्सा बन चुका था। अब वह कभी कभी मेरे पास आता था। उसके खाने और सुरक्षा को लेकर अब मैं निश्चिन्त था। शेरू के साथ खेलते समय अकसर रवि उसके मुँह में अपने हाथ डाल देता। उसकी पूँछ पकड़कर खींचता, खेलता और उसे तंग करता। रात में किसी भैंस के खूँटे से निकल भागने पर शेरू मुस्तैदी से अपने अपने आँख–कान एक कर उसके सामने खड़ा हो जाता और उसकी पगही (रस्सी) दाँतों से दबा लेता। अपनी सुरक्षा का ध्यान रखते हुए तबतक पगही ढीली नहीं होने देता था, जबतक घर का कोई व्यक्ति उसके दाँतों के बीच दबी पगही को थाम नहीं लेता था। मैं यह जानकर भी आश्चर्यचकित था कि स्वामीजी के शौच जाते समय वह भी उनके साथ जाता था और लौटते समय पानी का खाली डिब्बा दाँत से पकड़कर घर ले आता था।

शेरू एक कुशल शिकारी भी था। यह जानकर किसी को भी आश्चर्य होगा कि वह स्वामी जी के घर के दक्षिण मेंड़ (लाठ) पर बसे लोगों के पाले मुर्गे मुँह में दबाकर जीवित ही मेरे पास ले आता था। उसने दो बार दो मुर्गे मुँह में दबाकर मेरे पास लाये थे, जिन्हें उनके पालकों को मैंने सौंप दिया था। तीसरी बार वह जो मुर्गा लेकर मेरे पास आया, वह मरा था। शायद वह नहीं मरता यदि बस्ती के लोग उसको (शेरू को) मारने के लिए उसके पीछे लाठी–डंडे लेकर नहीं दौड़ते। आश्चर्य यह देखकर भी हुआ कि उस दिन जब मुर्गे का मांस उसको खाने के लिए दिया गया था, उसे वह मुँह नहीं लगाया, सूँघकर पीछे हट गया था।

साप्ताहिक छुट्टी का वह बहुत ध्यान रखता था। उस दिन वह या तो सबेरे ही मेरे पास आ जाया करता था या दोपहर बारह बजे के करीब। सीढ़ियों पर लगे दरवाजे पर पंजे मारकर आभास करा देता था कि वह आ गया है। जब मैं दरवाजा खोलता, बिजली की भाँति वह मुझसे पहले ही छत पर आ जाता और चारों पैर आसमान की ओर कर सिर हिलाने लगता, जैसे कह रह हो, अब वह कहीं भी नहीं जानेवाला। जब मैं बच्चों को पढ़ाने बैठता, वह भी कुर्सी से थोड़ी दूर बैठकर बड़ी सावधानी पूर्वक सुनता। शरारती बच्चों को उससे डर भी लगता। जब मैं किसी बच्चे को कक्षा में शोर मचाने या शरारत करने पर डाँटता या दंड देने के लिए आगे बढ़ता, शेरू उसकी ओर इस तरह झपटता जैसे उसे काट खाएगा। मुझे छड़ी फेंक देनी पड़ती। शेरू फिर संयत होकर अपनी जगह ले लेता। छुट्टी के बाद वह विद्यावती के साथ घर चला जाता। दोपहर के समय वह दूसरी बार स्वामी आनंद बल्लभी के साथ विद्यालय के पास स्थित राजकुमार की दुकान पर आता। दुकानदार उसे कुछ न कुछ खिलाते रहते। कभी–कभी शेरू शाम के समय विद्यालय पर रुकने के लिए अड़ जाता तो उसको जबर्दस्ती स्वामीजी के साथ घर भेजना पड़ता।

एक दिन नियत समय से पहले उसे विद्यालय आया हुआ देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। 'क्या बात है शेरू?' इतना कहते ही वह ऊँची आवाज में कीं–कीं करने लगा, मानो अपने मन की सारी भड़ास मुझपर निकाल रहा हो। इस स्थिति में मैं किंकर्तव्यविमूढ़–सा उसे निहारता रहा। थोड़ी देर बाद वह भी मेरे पीछे–पीछे छत पर आया और इस तरह लेट गया, जैसे अब वह कहीं जानेवाला नहीं।

उस दिन शाम के समय स्वामीजी की पत्नी अपनी छोटी बहन को विदा करने सड़क तक आयी थी। उनके साथ उनकी बेटी विद्यावती भी थी। अपनी बहन को ऑटो में बिठाकर जब स्वामीजी की पत्नी अपने घर की ओर मुड़ी तो मैंने सोचा शेरू को उनके साथ लगा दूँ। इस विचार से मैं छत से नीचे उतरने लगा। मेरे कई बार बुलाने पर भी वह सीढ़ियाँ उतरने के लिए तैयार नहीं हुआ। आज पहली बार शेरू मेरी बात नहीं सुन रहा था या सुनते–समझते हुए भी अपनी जगह से न हटने की जिद पर अड़ा था। बार–बार पुचकारने पर वह शिथिल पाँवों से सीढ़ियाँ उतरकर नीचे आया और सड़क पर मेरे पीछे–पीछे दक्षिण की तरफ बढ़ चला। मैं शेरू को उनके साथ लगाकर लौट आया। शेरू उनके साथ घर चला गया।

गर्मी का समय था। उस रात मैं स्वामी आनंद बल्लभ के यहाँ ठहरा था। भोजनोपरांत उनके छत पर ही विश्राम किया, शेरू भी सुबह तक मेरे पैरों के पास खड़ा रहा। सुबह जब मैं विद्यालय आ रहा था, शेरू भी मेरे साथ चला आया। सीढ़ी पर लगे दरवाजे को मैंने अंदर से बंद कर लिया। छत पर आकर जूठे बर्तन को साफ करते हुए सोचने लगा कि आज अपने और शेरू के लिए खाने में क्या पकाना है। शेरू नीचे ही रह गया था।

किसी की चपेट में आने की आशंका से मेरा मन काँप उठा। मैं सीढ़ियों से नीचे उतर आया। मुझे जिस बात की आशंका थी, वही हुआ था। शेरू का खून से सना शरीर सड़क पर पड़ा था और ट्रक उसके ऊपर से गुजर चुका था। वातावरण में सन्नाट पसर गया था। समझ में नहीं आ रहा था कि मदद के लिए किसे पुकारूँ। काँपते हुए हाथों से उसके मृत शरीर को उठाकर मैंने विद्यालय परिसर में रख दिया। विद्यालय के बच्चे उसकी मौत पर आँसू बहा रहे थे। उसकी दोस्त नन्हीं कुतिया भी उदास थी। स्वामीजी के घर खबर भिजवा दी गई। खबर पाते ही वे लोग विद्यालय आ पहुँचे पास की भूमि में ही शेरू के लिए कब्र तैयार की गई। उसके शव को कफन में लपेटकर दफनाया गया। आँखों में आँसू लेकर आहत हृदय से हम सबने उसको अंतिम विदाई दी। शेरू अब नहीं रहा, पर उसकी यादें आज भी हमारे साथ हैं।

कहानी

# जीते जी मर जाना

नसीम साकेती
लखनऊ
मो0 09415458582

सिर पर चरी तथा बरसीन का बोझ लादे, पसीने से तर–बतर जोधा सिंह ने बरामदे के पश्चिमी कोने में रक्खी चारा काटने की मशीन के निकट बोझ को सिर से उतारकर जमीन पर फेंका ही था कि बरामदे में बने ताक पर बैठे जंगली कबूतरों का जोड़ा फड़फड़ाकर उड़ गया, जो अभी कुछ देर पहले गूटरगूँ गूटरगूँ कर रहा था।

बोझ पटकने की आवाज सुनकर बरामदे के सामनेवाले नीम के पेड़ के पास छप्पर के नीचे बँधी श्यामा गाय उठकर रँभाने लगी, हों .....ों...ों..... हों....ों....ों हुँकारने लगी।

जोधा सिंह स्थानीय समबली कॉलेज में साइंस पढ़ाते हैं, वैज्ञानिक ढंग से उन्नतशील खेती करने के लिए पूरे इलाके में जाने जाते हैं, अन्न की खेती के साथ–साथ वह विगत पाँच वर्षों से फूलों की खेती कर रहे हैं, 'सीमैप' लखनऊ के संस्थापक निदेशक डॉ. अख्तर हुसैन तथा पूर्व निदेशक डॉ. खनूजा की प्रेरणा से अश्वगंधा, खश, मेन्था, सर्पगंधा, सतावर, तुलसी, नींबू, घास, मिल्क थिसिल तथा सफेद मूसली की खेती करना भी प्रारंभ कर दिया है।

खेती–किसानी करने में उन्हें गाँव के शिक्षित नवयुवकों की तरह बे–इज्जती का नहीं, बल्कि गर्व का एहसास होता है, जब वह खेतों में काम करते हैं, तब अध्यापक के बजाय 'होरी' और 'गोबर' बन जाते हैं, उन्होंने अपने इकलौते पुत्र राजू को लाख समझाया कि वह भी खेती से जुड़े और उनके साथ गाँव में रहकर खेती करने में उनका हाथ बटाये, अगर खेती ठीक से की जाए, तो नौकरी में क्या रखा है, उन्होंने राजू को समझाने का भरसक कोशिश किया, लेकिन राजू स्नातक की डिग्री लेने के बाद अपने दोस्तों के साथ दिल्ली में नौकरी करने चला गया, जिसका उन्हें आज भी बेहद अफसोस है।

जोधा सिंह ने सिर पर मुरेठा के रूप में बाँधे अंगोछा को उतारा और खोलकर, झटककर, सीधा करके चेहरे पर छलछला आये पसीने की बूँदों को पोंछते हुए लगातार हुँकार भरते श्यामा से मुखातिब हुए.... तुम्हारे लिए ही तो इस चिलचिलाती धूप में हरा चारा लेने गया था, थोड़ा देर और धीरज रखो, अभी मशीन से काटकर देता हूँ।

बोझ पटकने की आवाज सुनकर उनकी धर्मपत्नी सावित्री देवी छोटी–सी गोल डलिया में गुड़ तथा पानी से भरा लोटा लिये घर के अंदर से चौखट लाँघती हुई बोली—किससे बड़े प्रेम से बात कर रहे हो?

–तुम्हारी जान से, जिसे तुम मैके से लायी हो।

–श्यामा से?अच्छा, घाम से आए हो, थोड़ा जुड़ाने के बाद पहले पानी ली लीजिए, फिर हरा चारा काटिएगा, पसीना–पसीना हो रहे हैं, आज सूरज से जैसे आग बरस रही है, कल मौसम अच्छा था, बादल था, पुरबाई चल रही थी, जिससे मौसम ठंढा था।

ठंढा मौसम होने की वजह से ही तो कल खेतों के कोनों पर मेड़ों के किनारे की दूब घास जो हल अथवा ट्रैक्टर की जोताई के बाद भी रह जाया करती है, उसे निकालने में लेशमात्र भी पसीना नहीं निकलता था, बड़ा मजा आ रहा था, आज की तरह चिल चिलाती धूप न होने के कारण बड़ी जल्दी काम खत्म हो गया था।

कास तथा मूँज की बनी रंग–बिरंगी गोल सुंदर डलिया को जोधा सिंह की ओर बढ़ाते हुए सावित्री बोली–लीजिए गुड़, अब तो पसीना सूख गया होगा?

जोधा सिंह ने डलिया में से छोटे–छोटे गुड़ के टुकड़े एक ही बार में उठा लिया और एक के बाद एक टुकड़ा मुँह में डालकर दाहिने जबड़ें के दाँतों से धीरे–धीरे दबाकर चुल–बुलाने के बाद निगल गये।निगलने के बाद जबान को मुँह के अंदर चारो ओर फेरने के बाद अपनी पत्नी के हाथ से पानी से भरा लोटा लेकर चुल्लू पीने लगे, जोधा सिंह चुल्लू पानी पीने में ऐसे माहिर थे कि एक बूँद भी पानी जमीन पर नहीं गिर सकता था।

–बहुत ठंढा पानी है, इंडिया मार्क–2 का तो है नहीं, एक लंबी डकार लेने के बाद जोधा सिंह अंगोछा से मुँह पोंछते हुए बोले।

–लाला वाली कुइयाँ से लाई हूँ, जिसका ठंढा पानी पूरे जवार में मशहूर है, अपने सामनेवाली पुश्तैनी कुआँ का पानी भी तो ठंढा होता है, लेकिन रात में उसका पानी काफी नीचे सरक गया, चारपाई की अदवाइन भी खोलकर उबहन में जोड़ने के लिए ले गयी थी, लेकिन उसपर भी उबहन छोटी पड़ गई, बाल्टी पानी तक नहीं पहुँची कुएँ के पानी से एक हाथ ऊपर ही झूलती रही।

–लालाजी की रस्सी तो काफी लंबी रही होगी, जिसे अभी परसों ही तो तिवारी जी ने गणपति स्टोर से लेकर आये हैं। कह रहे थे, पहलेवाली रस्सी में कई जगह से टूटने के कारण गाँठें पड़ गयी थीं और गाँठ के खुलने से बाल्टी तथा घड़ा आदि के कुइयाँ में गिरने की आशंका बनी रहती थीं।यदि कुआँ में बाल्टी, लोटा या घड़ा गिर जाता है तो उन्हें चैतू महरा रस्सी के सहारे कुआँ में उतरकर डुबकी लगाकर हाथ–पैर को चारो तरफ मारते हुए निकाल देते हैं, लेकिन कुइयाँ में गिरने पर कुइयाँ के सँकरी होने के कारण हाथ–पैर मारने की जगह ही नहीं मिलती है, मजबूर होकर काँटा से निकालने का सहारा रह जाता है, काँटा में बरतन का मुँह फँस गया, तब तो ठीक, बरना बरतन उसी कुइयाँ का होकर रह जाता है।

राजू के विवाह में मिला बड़ावाला अपना पीतल का घड़ा कहाँ मिला था... कुइयाँ में गिरने के बाद?घड़ा का मुँह छोटा था, चैतू बेचारा बड़ी देर तक काँटा डालकर रस्सी को घुमा–घुमाकर टटोलता रहा, लेकिन बेसूद सावित्री बोली–कोनेवाले इंडिया मार्क–2 का पानी भी तो ठंढा ही होता है।

–वह तो साल भर से खराब पड़ा है।

–जानता हूँ, सरकारी है न?

हरा चारा देखने के बाद से श्यामा से रहा नहीं जा रहा था। उसके धैर्य का बाँध टूटने ही वाला था, क्योंकि वह खूँटे से बँधे अपने पगहा (रस्सी) को खींचकर बार–बार तोड़ने का प्रयास कर रही थी, लेकिन प्लास्टिक की रस्सी होने के कारण हर बार नाकाम रह जाती थी। जोधा सिंह तथा सावित्री को बातों में मशगूल देखकर श्यामा ने उनकी ओर मुँह करके एक बार फिर हुंकार लगाया हों ...ों...ों....हों...ों.....ों जोधा सिंह बोले–लगता है श्यामा बहुत भूखी है।

–गाभिन है न?ऐसी दशा में जानवर कुछ ज्यादा खाने लगते हैं,सावित्री बोलीं।

–जानवर ही क्यों?राजू जब पेट में था, तब तुमको भी खूब भूख लगती थी, छुप–छुपकर खाती रहती थी।साथ में चूल्हे की जली मिट्टी तथा खटाई भी।

–हटो जी, अरे! मैं तो भूल ही जा रही थी कि डी.एम. साहब ने फिर आज लेखपाल को भेजा था प्रधानजी लेकर आए थे। कह रहे थे कि मुँहमाँगा दाम

देशी–विदेशी कंपनियाँ देने को तैयार हैं। यहाँ वे कोई प्लांट लगाना चाहते हैं। आपके खेतों के अगल–बगल के किसान आपके ऊपर उाल दिये हैं कि अगर ठाकुर साहब अपने खेतों को बेचते हैं, तो हम भी बेच देंगे, वरना नहीं। अच्छा पैसा मिल जाएगा, आप ठाकुर साहब को क्यों नहीं समझाती है?सावित्री ने विस्तार से बताया।

–कह देतीं कि हम किसी दशा में अपने खेतों को नहीं बेच सकते, खेत किसान के लिए उनकी औलाद के समान होते हैं, बिरले ही अपने औलाद को बचेते हैं, वह भी विवशताओं के चंगुल में फँसकर, हमारे उपजाऊ खेतों की धरती हमारी हर जरूरत को पूरा करती है, पैसा तो हाथ का मैल है, कितने दिन तक हाथ में रहेगा?धीरे–धीरे खिसक जाएगा और हमारे सोना जैसे खेत पीढ़ी दर पीढ़ी सोना ही उगलते रहेंगे, आनेवाली नस्लों की जरूरतों को पूरा करते रहेंगे, जोधा सिंह आत्मिक रूप से बोले।

–हाथ से इशारा करती हुई सावित्री बोली, वह देखिये प्रधानजी लेखपाल के साथ फिर आ रहे हैं। ठाकुर साहब चारा काटने की मशीन चलाते–चलाते सिर घुमाकर देखने लगे।

–ठाकुर साहब नमस्कार, प्रधानजी और लेखपालजी ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

–नमस्कार, ठाकुर साहब चारा काटने की मशीन के हैंडिल को घुमाना बंद करके बरामदे के दूसरे छोर पर पड़ी चारपाइयों की ओर जाकर बैठने का संकेत किया, वे लोग चारपाई में जाकर बैठ गये। ठाकुर साहब भी खरामा खरामा अंगोछे से हाथ–मुँह पोंछते हुए उनके पास जाकर बैठ गये।

–ठाकुर साहब, डी.एम.साहब ने आज फिर लेखपाल को आपके पास भेजा है, उनपर मंत्रीजी का बड़ा दबाव है,वह आपकेपास खुद आनेवाले थे, लेकिन मुख्यमंत्रीजी का अचानक प्रोग्राम बन गया, जिससे नहीं आ पाये।मुख्यमंत्रीजी बड़े कड़क और महत्वाकांक्षी हैं, खड़े–खड़े अधिकारियों की इज्जत उतार देते हैं, अधिकारियों की रूह फना रहती है उनसे, अधिकारियों का ट्रांसफर रोज करते रहते हैं, चाहें उसे अभी आये हुए जुमा–जुमा आठ ही दिन क्यों न हुआ हो?यही कारण है कि डी.एम.साहब का यहाँ आने का पूर्व कार्यक्रम होते हुए भी वह नहीं आ सके, आँकड़े जुटाने में लगे हैं, किसी भी आँकड़े में लेशमात्र भी त्रुटि मिली नहीं कि अधिकारी महोदय की इज्जत सरेआम निलामी के साथ–साथ उस जिले से पत्ता साफ।

–प्रधानजी, मैंने तो आपको उस दिन ही बता दिया कि किसी दशा में, किसी भी देश–विदेशी कंपनी के हाथों अपने खेतों का सौदा नहीं करूँगा, जोधा सिंह बोले।

–लेकिन ठाकुर साहब, सरकार तो चाहती है कि यहाँ बाटलिंग प्लांट लगाये जाएँ, कंपनीवालों ने आपके तथा उसके आस–पास के खेतों को चिह्नित किया है, लेखपाल साहब तथा प्रधानजी के स्वर फूटे।

कितनी बड़ी त्रासदी है कि उपजाऊ भूमि पर जहाँ भरपूर अनाज हो रहा हो, वहाँ बाटलिंग प्लांट लगाने तथा एक्सप्रेसवे बनाने के लिए किसानों की हितैषी कहलाने का दम भरनेवाली प्रजातांत्रिक सरकार भी सहमत है, प्रधानजी उस दिन आप भी तो थे, जब पर्यावरणविद्, भूवैज्ञानिक डॉ.सिद्धांत पांडे ने किसानों की विशाल रैली को संबोधित करते हुए कहा था–पृथ्वी के नीचे का जलस्तर नीचे खिसकता जा रहा है, अब आपलोगअपने अपने खेतों में हर जगह व्यक्तिगत ट्यूबवेल बोर करके पृथ्वी के नीचे के जल का दोहन बंद कर दें, सामूहिक ट्यूबवेल से काम चलाएँ, सुना है कि कोई विदेशी कंपनी यहाँ बोतलबंद पानी तथा शीतल पेय का प्लांट लगाने का प्रयासकर रही है, यदि प्रश्नगत प्लांट इस क्षेत्र में लगाये गये तो कालान्तर में यहाँ के लोग एक– एक बूँद पानी के लिए तरस जायेंगे, चौबीसो घंटे प्लांट चलने से पृथ्वी के नीचे के पानी का इतना अधिक दोहन हो जाएगा कि जलस्तर बड़ी तेजी से नीचे सरकार को भी प्रश्नगत जमीन न देने के लिए लिखा है,जोधा सिंह ने स्मरण दिलाया।

–जी हाँ ठाकुर साहब!उस दिन मैं उस सभा में उपस्थित था, लेकिन...

–प्रधानजी, इस भयानक परिदृश्य की कल्पनामात्र से आत्मा काँप उठती है कि सरकार हमारे हरे–भरे खेत हमसे लेकर देशी विदेशी कंपनियों के हाथों सौंपना चाहती है, अगर सरकार देशी– विदेशी कंपनियों को भूमि देना ही चाहती है विकास के नाम पर,तो राघवपुर की हजारों एकड़ बंजरभूमि को क्यों नहीं दी है?

–इच्छुक कंपनियों का कहना है कि वहाँ आवागमन का कोई साधन नहीं है, आँचलिक और बीहड़ इलाका है और यहाँ कंपनी इसलिए लगाना चाहती है कि ये स्थानराष्ट्रीय राजमार्ग के एकदम किनारे स्थित है, कच्चे और पक्के माल के आवागमन में बड़ी सुविधा होगी, कम खर्च आएगा, प्रधानों की मीटिंग के दिन डी.एम.साहब बता रहे थे, आपके जमीन न देने से बहुत बुरा असर पड़ रहा है, किसानों का एक बड़ा वर्ग विरोध में सिर उठाने लगा है, कह रहे थे कि मेरी बड़ी किरकिरी हो रही है, मुख्यमंत्री जी का शंकर की भाँति तीसरा नेत्र कहीं मेरी ओर न खुल जाए, प्रधान जी बड़ी मायूसी से बोले।

–प्रधानजी, किसानों का सिर उठाना स्वाभाविक है, क्योंकि अब किसान पहले जैसा किसान नहीं रहा, जो गुलामों जैसी जिंदगी जीता था, अब उसमें जागृति आयी है, वह अपना अच्छा–बुरा खुद समझने लगा है। प्रधानजी आपको तो सबसे पहले विरोध का परचम लहराना चाहिए था, लेकिन लगता है कि आप भी?

–ठाकुर साहब, क्या मैं डी.एम.तथा सरकार से बड़ा हूँ?उनके आगे हमारी क्या औकात?क्या विसात है?किस खेत की मूली हूँ मैं?

–प्रधानजी, आप भी तो किसान हैं और किसान होना ही आपकी बहुत बड़ी औकात है, ताकत है, यहाँ का किसान आज संगठित हो चुका है, आप सामने आइए तो?सरकार तथा डी.एम.के साथ आप पर भी कंपनियों से मिलीभगत की जो उँगलियाँ उठ रही हैं, वे स्वतः ही गिर जाएँगी, किसानों का नेतृत्व करने से आपका कद काफी ऊँचा हो जाएगा, जोधा सिंह ने दृढ़ निश्चय के साथ कहा।

–ठाकुर साहब, अपने गाँव का रास्ता नंदीग्राम की ओर न मोड़िए, प्रधानजी मिमियाते हुए बोले।

–रास्ते मोड़े नहीं जाते, परिस्थितियाँ खुद मोड़ दती हैं।

–अगर सरकार नहीं मानी तो कुछ भी हो सकता है, सरकार के सौ हाथ होते हैं।

–क्या आपका इशारा उस नंदीग्राम की ओर है, जहाँ लोकतंत्र तथा इंसानियत शर्मसार हो चुकी है और जहाँ तक सरकार के सौ हाथ होने की बात है प्रधानजी, किसानों के हाथों की शक्ति को आप कम मत आँकिये, किसान आंदोलन ने तो अंग्रेजी शासन को धूल चटा दी थी और यह सरकार तो किसानों का मसीहा कहलाने का दम भरती है तथा सबसे बड़ी हितैषी का बिल्ला तथा झंडा लगाये फिरती है, जोधा सिंह का स्वर उभरा।

–लेकिन ठाकुर साहब, आप ऐसा क्यों नहीं सोचते हैं कि प्लांट लगने से इस क्षेत्र में रोजगार के अवसर बढ़ेंगे, बेरोजगारों को नौकरियों का अवसर मिलेगा, इस क्षेत्र का विकास होगा।

–प्रधानजी, विकास नहीं, विनाश होगा, इन हरे–भरे खेतों का विनाश करके, आपने तो हमारी ससुराल के गाँव 'गजरा' को तो तबाह होते देखा है न?जहाँ बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने किसानों को सब्जबाग दिखाकर उनके हरे–भरे खेतों

पर डाका डालकर उन्हें दाने–दाने का मोहताज बना दिया। बाटलिंग प्लांट लगाने के बाद 25 हॉर्स पावर की मशीन लगाकर भूगर्भीय जल का ऐसा दोहन किया जाता है कि बोरिंग, कुएँ तथा तालाब सूख गये, नदियाँ सिकुड़कर नाला बन गयी, क्योंकि जलस्तर 40–50 फीट नीचे चला गया, पृथ्वी की नीचे लहरें मारते जलाशय सूखते चले गये, आस–पास के खेत बंजर में परिवर्तित होने लगे, कुछ बचे–खुचे खेतों पर अगर किसान खेती करना भी चाहता है तो कर नहीं सकता था। इंडिया मार्क–2 हैंडपंपों की जान तो पहले ही निकल चुकी थी, उन्होंने पानी देना बंद कर दिया था, आज गाँव की स्त्रियाँ एकदम तड़के उठकर 5 किलोमीटर दूर दिलावरपुर से पानी लाती हैं, इससे भी पूरा न होने पर उस गाँव में शहर से टैंकर में पानी लाकर लोग बेचते हैं और अगर यदि यही हाल रहा तो वह दिन दूर नहीं, जब हमें बोतलबंद पानी खरीदकर नहाना पड़ेगा, आखिर कंपनियाँ अपने देश से पानी क्यों नहीं लाती हैं?अभी तक गाँव में जमीन–जायदाद, अगवारे–पिछवाड़े, खूँटे तथा रास्तों के लिए झगड़े होते हैं, वह दिन दूर नहीं जब पानी के लिए एक दूसरे के सिर फूटेंगे, हत्याएँ होंगी।

खेतों के बंजर होने के कारण गाँव के नामीगिरामी काश्तकार भी विकासनगर से 'लेबर–अड्डा' पर देखे जा सकते हैं, क्या वही सब यहाँ भी कराना चाहते हैं?किसानों को बहुराष्ट्रीय देशी–विदेशी कंपनियों का गुलाम बनाना चाहते हैं?ठाकुर साहब मैं देशी–विदेशी कंपनियों का विरोधी नहीं हूँ, यहाँ बहुतायत से उद्योग लगाए जाएँ, लेकिन खेती योग्यभूमि पर नहीं, बल्कि बंजर जमीन पर जो यहाँ बहुतायत से उपलब्ध है, जोधा सिंह के अंदर का किसान बोल रहा था।

–ठाकुर साहब, आपकी बातों में दम तो है, लेकिन मेरी विवशता, प्रधानजी घिघियाये।

–प्रधानजी, विवशता को उतार फेंकिए, अभी पिछले इतवार को ही वैज्ञानिक तथा समाजसेवी संदीप पांडेय जी का अखबार में वक्तव्य छपा था– भूख–प्यास से दम तोड़ते किसानों की लाशों पर राजनीति करनेवाले जब एयर कंडीशन कमरों में बैठकर पेप्सी, कोक तथा बोतलबंद पानी पी–पीकर किसानों के हितों की योजना बनाएँगे तो ऐसी योजनाएँ कितनी फलीभूत होंगी, इसका अंदाजा लगाना मुश्किल नहीं है, प्रधानजी पिपरा गाँव के किसान कितने खुशहाल थे, अपनी खेती की हरियाली देखकर उनके सीने गजभर हो जाया करते थे, लेकिन कुछ किसान लालच में आकर अपनी जमीनें बोतलबंद पानी के प्लांट लगाने के लिए बेच दिया, वहाँ बोतलबंद पानी का उत्पादन दिन–दूनी रात–चौगुनी होने लगा, लेकिन पानी को शुद्ध करने की प्रक्रिया से निकलवाने रासायनिक अपशिष्ट (कचरा) फैक्टरी के आसपास डाला जाने लगा, जिसका खतरनाक रसायन वर्षा के पानी तथा हवा द्वारा आसपास के लहलहाते खेतों में पहुँच गया, जिससे खेती चौपट हो गयी, जमीनें बाँझ होने लगीं, आसपास के कलमी तथा देशी आम के बाग जो फलों से लद जाते थे, अब उनमें बौर तक नहीं आ रहे हैं, मनुष्यों में चर्मरोग, कैंसर, दिल–गुर्दा तथा श्वास की बीमारियाँ उभरने लगीं हैं।

प्रधानजी तथा लेखपाल ठाकुर साहब की बातों को आँखें फाड़े सुन रहे थे, उनकी बोलती बंद थी, क्योंकि सच्चाई तथा हकीकत को झुठलाना अब उनके बूते में नहीं था। वे अवाक् ठाकुर साहब की ओर निर्निमेष देखते रहे। ठाकुर साहब को लगा कि अब तीर निशाने पर है, उनका स्वर फिर उभरा–प्रधानजी! इन कंपनियों ने किसानों की जमीनों और पानी को प्रभावित नहीं किया है, बल्कि गाँवों में आनेवाली बिजली को भी अपने सूक सनीचरी पेट में भर लिया है। गाँव में जहाँ सूरज डूबने के बाद शाम को थोड़ा बहुत बिजली मिल जाती है, वह कंपनियों की मशीन के 24 घंटे चलने के कारण उनकी भेंट चढ़ जाएगी। आप ही बताइए हम खेती नहीं करेंगे तो खायेंगे क्या?विदेशों से आयतित सड़ा–गला गेहूँ?वह भी कबतक?हम पहले से ही सरकार के गलत कृषि नीतियों के कारण अन्न के संकट से दो चार हो रहे हैं, यदि फौलादी तथा ककरीट के जंगल उगाने के लिए हम अपने हरे–भरे खेती के जमीनों का सौदा करते रहें, तो वह दिन दूर नहीं, जब हमें अन्न के घोर कयामती संकट का सामना करना पड़ेगा और तब हम हाथ मलते रह जायेंगे।

बोलते–बोलते बीच में ठाकुर साहब को खाँसी आ गयी, उन्हें लगा जैसे गले में कोई चीज फँस गयी है। चारपाई से उठकर उन्होंने श्यामा गाय के छप्पर के पास बने घर पर खखार कर गला साफ किया, वहाँ से वे लौटे तो देखा कि मिझौड़ा, जैमलपुर, पहितीपुर तथा भीटी गाँवों के छोटी–बड़ी जोत वाले किसान उनके घर की ओर तेज कदमों से चले आ रहे हैं। हुआ यह था कि यह बात उपर्युक्त गाँवों जंगल में लगी आग की तरह फैल गयी थी कि प्रदेश की सरकार ने सरकारी अहलकारों को ठाकुर साहब पर दबाव डालने के लिए भेजा है। मुख्यमंत्री ने हमारे उपजाऊ हरेभरे खेतों की जमीन को किसी विदेशी कंपनी से सौदा करने का मन बना लिया है, उन्होंने अपने चहेते डी.एम. सेंगल को अपने बंगले पर बुलाकर दो टुक शब्दों में इशारा कर दिया है। किसी भी दशा में प्रश्नगत जमीन का अधिग्रहण होना है, सहमति पत्र पर हस्ताक्षर कराना है, भले ही उंगली टेढ़ी करनी पड़े, बाकी मैं देख लूँगा।

जनसमूह को अपने घर आते देखकर ठाकुर साहब की बाछें खिल उठीं, दिल बल्लियों उछलने लगा, नसें फड़कने लगीं, वही प्रधान तथा लेखपाल को जैसे साँप सूँघ गया हो।

ठाकुर साहब चारपाई पर बैठे ही थे कि लेखपाल का स्वर फूटा–ठाकुर साहब मैं भी एक किसान का बेटा हूँ, लेकिन?

–लेकिन क्या?

–चाकरी की विवशता। डी.एम. साहब ने तहसीलदार साहब, नायब तहसीलदार साहब तथा कानूनगो साहब को यह कागज लेकर भेजा था, उन्होंने कागज यह कहकर मुझे पकड़ा दिया कि पहले तुम प्रधानजी को लेकर ठाकुर साहब को समझाओ। डी.एम0 सर्किल रेट दिखाकर उनसे इस कागज पर हस्ताक्षर करने के लिए कहो, पीछे से हम आ रहे हैं। साहब लोग आ ही रहे होंगे ठाकुर साहब, इस कागज को आप पढ़कर इसपर हस्ताक्षर कर दीजिए, इसमें क्षेत्र की डी.एम.सर्किल रेट से कई गुना ज्यादा रेट दिया गया है। अपने बस्ते से कागज निकालकर लेखपाल ने सरकारी पक्ष रखा।

–अधिक रेट जाय चूल्हे के भाड़ में और हस्ताक्षर?इस कागज पर हस्ताक्षर करने का मतलब है–मेरा जीते जी मर जाना, आत्महत्या। मुझे किसान ही रहने दें। किसान होने का मुझे गर्व है, किसान को धरतीपुत्र कहा गया है। लेखपालजी आप और प्रधानजी मेरा सवाल है कि क्या कोई अपनी माँ का सौदा कर सकता है?ठाकुर साहब अपने स्वाभाविक स्वर से उच्च स्वर में बोले।

–ठाकुर साहब जिन्दाबाद!ठाकुर साहब जिन्दाबाद!

किसानों के गगनभेदी जिन्दाबाद के नारों की शक्ल में उनके अंदर का दबा हुआ आक्रोश करवट ले रहा था। लेखपाल तथा प्रधानजी को वक्त की नजाकत को भाँपने में लेशमात्र देर नहीं लगी, उनके मस्तिष्क की शिराओं में यह बात बिजली की तरह कौंध गई–'अब दबाव डालना अथवा कुछ और कहना खतरे से खाली नहीं?'

लेखपाल जिस कागज को ठाकुर साहब की ओर बढ़ा रहे थे, उसे मोड़कर अपने बस्ते के हवाले किया, एक गहरी सांस लिया और चारपाई की पट्टी पर हाथ रखते हुए प्रधानजी से सांकेतिक भाषा में कुछ कहा–हारे हुए जुआरी की तरह उनके चेहरों पर हवाइयाँ उड़ रही थीं।

कहानी :

# मल्लिका

शमीम राशिद
फारबिसगंज, अररिया
मो. 957248553

मैं दिल्ली से कटिहार आ रही ट्रेन के डिब्बे में बैठा था। उस दिन काफी भीड़ थी। ढेरो यात्री सीट की प्रतीक्षा में खड़े थे। तभी टी.टी.ई. का एक दल पहुँचा। चेकिंग के दौरान मेरे बगल में बैठे एक युवक को जब टी. टी.ई. ने पकड़ लिया तो उसने टी.टी.ई. के समक्ष बहुत रोया–गिड़गिड़या उसने कहा कि सिी ने उसकी पॉकेट मार ली और उसी क्रम में सारे रुपये सहित टिकट व कई जरूरी कागजात भी चला गया। पर टी.टी.ई. ने उसकी एक नहीं सुनी और अगले स्टेशन पर उसे जेल भेज देने की बात कही। मुझे उस युवक की विपदा स्थिति पर दया आ गयी, जेल जाने की आशंका से उसके भावी भविष्य के बिगड़ जाने पर सोचने को विवश होना पड़ा। फलस्वरूप मैंने उसके जुर्माना की रकम देकर रसीद थमा दिया। वह युवक मुझे धन्यवाद की झड़ी लगा दिया। बातचीत के दौरान उसका नाम पूछा तो उसने अपना नाम विजय बताया और गाँव का पता भी बताया उसी क्रम में मैंने पूछा–तुम तो अगले ही स्टेशन पर उतर जाओगे न! जी हाँ।

'और आप कहाँ तक चलेंगे सर!

मैं तो कटिहार तक चलूँगा। देखो, संयोगवश अगले सप्ताह तुम्हारे बगल वाले गाँव में भी जाने का इरादा है।

अगले स्टेशन पर युवक तो उतर गया। किन्तु मेरे मन मानस में उसकी सौम्य छवि बहुत देर तक कौंधती रही। अगले सप्ताह कृषि विकास कार्य से मुझे उस युवक के समीप के गाँव के किसानों को सरकार की ओर से मिलनेवाली सहायताओं के बारे में एक कार्यक्रम कर जानकारी देनी थी। निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार जब मैं उस गाँव के लिए निकला और पहुँचते ही देखा कि अन्य ग्रामीणों के साथ विजय भी स्वागतार्थ है। कार्यक्रम संपन्न पश्चात् विजय के आतिथ्य में उनके विशेष स्नेहाग्रह के सामने रुकना पड़ा। मैं पहुँचने से उसके परिजनों में भी अति उत्साह पाया। भोजनोपरांत जब मैं लौटना चाहा तो सपरिवार एक स्वर से रोक लिया। फिर सोने के लिए बिछावन पर आया ही था कि विजय ट्रेन की यात्रा के संबंध में बातचीत शुरू कर दिया। फिर उसने जो कुछ बताया वह समाज व रिश्ते की भयावह जीवंत तस्वीर था। बार–बार उपकार की बात बोलने पर बीच में एकबार मैंने कहा–देखो, मुझे बहुत दुख लगेगा, अगर तुमने अबसे दुबारा उपकार की बात करोगे तो...। फिर उससे कहा–मेरे जीवन में अबतक कुछ भी ठीकठाक नहीं हुआ है। जब मैं पाँचवीं कक्षा में पढ़ता था, तो वही मेरे पड़ोस की एक लड़की निभा भी पढ़ती थी, उसका एक पैर अर्धविकलांग था। लेकिन देखने में बहुत सुंदर थी। साथ ही साथ वह पढ़ने में तेज होने के साथ–साथ लिखती भी सुंदर थी। इसके अलावा गीत भी अच्छा गाती। गीत गाने में इतनी निपुण थी कि विद्यालय के समारोह में जब गाती तो सभी मंत्रमुग्ध हो जाते। उसे अपने अपाहिजपन का कोई मलाल न था। वह इतनी निर्भीक थी कि न अपने आप को कोसती और न ऊपरवाले को। घर में उससे छोटी एक बहन और एक बड़े भाई थे। उसके पिताजी काफी पहले ही इस संसार से चले गये थे। जब आठवीं कक्षा में प्रवेश किया तो उसके बड़े भाई का विवाह हुआ था कुछ दिन तक तो सब कुछ ठीक–ठाक रहा, किन्तु समयानुसार उसकी मामी अपनी प्रभाव दिखाने लगी।

घर के काम काजों को लेकर रोज–रोज बखेड़े करने शुरू कर दी अंततः उसके बड़े भाई ने अलग रहने का फैसला ले लिया। फिर उसकी माँ ने गाँव के कुछ प्रतिष्ठित लोगों के अलावा सरपंच व मुखिया से सलाह मशविरा कर जमीन–मकान आदि का बँटवारा कर दिया।

दसवीं कक्षा में पहुँचने के बाद अगले छह महीने में मैट्रिक की परीक्षा होनेवाली थी इस दौरान उसके घर की स्थिति इतनी दयनीय हो गयी कि उसे पढ़ाई छोड़ सिलाई–कढ़ाई के कामों में लग जाना पड़ा। घर के काम–काज, पति की मृत्यु सयानी होती जा रही बेटी का भविष्य एकमात्र बेटे का अलग हो जाने जैसी चिन्ताओं के कारण उसकी माँ की तबियत भी ठीक नहीं रहने लगी थी। वह डिप्रेशन की चपेट में पूरी तरह आ गयी थी। कमजोरी से धीरे–धीरे उठने–बैठने से भी लाचार हो गयी। एक दिन निभा जब सुबह की चाय लेकर माँ को देने गयी, उसके प्राण पखेरू उड़ चुके थे। माँ को उस अवस्था में देखकर वह जोर से चीख पड़ी और फूट–फूटकर रोने लगी। रोना–धोना सुनकर पास पड़ोस के लोग एकत्रित होने शुरू हो गये। इस काम में उसके भाई–भाभी भी पीछे नहीं रहे और रो–रोकर माँ के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करते रहे। माँ की मृत्यु पश्चात् उसके भाई के सिर पर निभा के विवाह का बोझ कुछ लोगों ने डाल दिया था। इससे वह हकीकत में रोने लगा, लेकिन दिखता नहीं था। विवाह के नाम पर एक ऐसे व्यक्ति से संबंध जोर दिया, जो संदिग्ध किस्म का था, समाज के लोग अफसोस के सिवा कुछ नहीं कर सके। विवाह पश्चात् निभा के ससुरालवालों को न कोई पता चला और न उसका भाई ने ही उसकी कोई खोज–खबर ली।

इस दौरान स्नातक करने के पश्चात् मैं काम की तलाश में दिल्ली चला गया। सपने तो मैंने बहुत बड़े–बड़े संजो रखे थे। कंप्यूटरीकृत युग में काफी भटकने के बाद मुझे एक कंपनी में रात्रि पहरेदारी की नौकरी मिली। कई समस्याओं का सामना करते हुए लगभग तीन महीने तक वहाँ काम किया, फिर मेरी तबियत ऐसी बिगड़ी कि मुझे नौकरी छोड़नी पड़ी। मैं गाँव आ गया। महीनों में स्वास्थ्य लाभ के बाद मैं काम की तलाश में पुनः दिल्ली पहुँच गया, लगभग सप्ताहभर दौड़–धूप करने के फलस्वरूप एक कंपनी में काम मिल गया। वहाँ महीना भर भी नहीं रहा कि अचानक इस इलाके में दंगा भड़क उठा। कंपनी के मालिक ने सबको अपनी स्वेच्छा से सभी कर्मियों को अपने–अपने अन्य सही ठिकानों पर चले जाने की सलाह दे दिया। मैं घबरा गया। मेरे सामने तो साँप नेवला वाला हाल आकर खड़ा हो गया । जाऊँ तो जाऊँ कहाँ। कंपनी के दो–चार मित्र थे, वो भी अनहोनी के डर से मुँह फेर लिया। बाहर पुलिस की लाठी जिस–तिस पर बरस रही थी। आँसू गैस के गोले छोड़े जो रहे थे। भले लोग अपने–अपने घरों में सपरिवार बंद हो गए। दंगाई रोड़ों पर तोड़फोड़, मारपीट, आगजनी। मेरे मन में कई तरह के विचार आने लगे। अंततः दंगाइयों से छुपते–छुपते रात को ही चली थी। उसी दरम्यान एक सुनसान गली में पहुँच गया। जिसके दोनों ओर दो मंजिलें मकान बने हुए थे। दीवारों पर फिल्मी पोस्टर चिपके हुए थे। कहीं–कहीं लाल पेंट से कुछ–से–कुछ बातें लिखी हुई थी। अनजान और भयभीत होने के कारण मैं एक चौड़ी दरवाजे वाले मकान के दरवाजे के पास बैठ गया। रात ज्यों–ज्यों बढ़ती मेरा दिल त्यों–त्यों धड़कते जाता। तत्क्षण उस दो मंजिले मकान के दूसरे तल्ले से एक औरत की आवाज आई कौन है बै, चिकने शाहरूख है या अमिताभ, आना चाहो तो ऊपर आ जाओ। उस समय मेरा दिल ऐसा धड़का कि.....।

भूख, थकान, डर से मेरी हालत ऐसी खराब थी कि मैं आखिरकार डर–डरकर हिम्मत कर ऊपर चला ही गया। ऊपर जाने पर मुझे यह समझने में देर नहीं लगी कि दंगा और दंगाइयों से बचते–बचाते मैं देवदास के चंद्रमुखी के जैसे कोठे पर पहुँच गया। मैं पूरी तरह संभल भी नहीं पाया था कि मेरे सामने एक और युवती आ गयी। यह बोली–पहले कमरे का दरवाजा बंद कर ले, नहीं तो। यहाँ भी हमला हो सकता है। दरवाजा बंद कर उसके चेहरे को देखा तो लगा कि मैं शायद इसे पहचानता हूँ। फिर वह भी गौर से देखने लगी। फिर तु–तुम विजय..., निभा और फिर सहसा रूहासी गले और आँखों से ऐसे आँसू गिरने लगे, ऐसा लगा जैसे कोशी नदी बाँध तोड़ दी हो। जब उसके आँसुओं का वेग थोड़ा कम हुआ तो सिसकते सिसकते बोली–गाँव में सब ठीक है न। देखो न भइया ने मेरा विवाह जिससे करवाया था, वो तो लड़कियों का दलाल था। वो मेरी जैसी न जाने कितनी लड़कियों के जीवन को तवाह और बर्बाद कर डाला। यहाँ कि दुनिया ऐसी है कि उसने हताश भरे स्वर में कहा। आज तुम मिले भी तो वह और कुछ बोलना चाह ही रही थी, पर न बोल सकी। भारी थकावट से मुझे नींद आने लगी थी। वह सोने के लिए बिछावन कर दी। बहरहाल, बड़ी मुश्किल से वह तीसरे पहर तक की रात कटी थी मेरी।

उस रात अतीत में गोते लगाते ही काँप उठा, फिर सोचा सुबह जब होगी तो। अहले सुबह ही उठकर मैं वहाँ से बिना बताए निकल पड़ा। फिर निभा के बारे में सोचा तो पास आते ही सुबह–सुबह उस गली में गया, ताकि एकांत में जाकर उससे बातें कर उसे वापस नई जिंदगी की शुरुआत के संदर्भ में सलाह दूँ, किन्तु जब मैं उस गली से उसके मकान में समीप गया तो वहाँ लोगों की भारी भीड़ लगी हुई थी। मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वही लोग बोल रहे थे कि कोठे की मल्लिका नाम की किसी को छत से फेंक दिया।

पास जाकर देखा तो वह मल्लिका कोई और नहीं निभा ही थी। वही पुलिस को उसके साथ रहनेवाली बयान दे रही थी कि कल रात एक आदमी आया था। लंबाई ...पुलिस उसका नक्शा लेने गया। मुझे समझने में देर न लगी और मैं वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गया। मेरे पैर जमीन पर नहीं बुझा रहे थे। लोग कड़ी शासन–व्यवस्था के कारण दंगा पर काबू पाने से राहत में दिख रहे थे और मैं...। उसी क्रम में सीधे दौड़ते–दौड़ते स्टेशन से गाँव के लिए ट्रेन पकड़ लिया। सुबह आते समय विजय और उसके परिजन ने मुझे भावभीनी विदाई दी।

निभा ने मुझे झकझोर कर रख दिया था। साथ ही इस बात का रंज भी हुआ कि आज भी स्थिति परिस्थिति की मारी सैकड़ों निभा अपनी बेबसी भरी जिंदगी जी रही हैं। ट्रेन एक स्टेशन से दूसरी स्टेशन के लिए बढ़ी ही थी कि एक भिखारी गाना गाकर सभी से पैसे माँगते हुए ध्यान भंग कर दिया।

लघुकथा

## गाँधी जी के तीन बन्दर (आधुनिक दौर में प्रासंगिकता)

–डॉ. अलका रानी अग्रवाल,
चन्दौसी उ.प्र.

हम सबको गाँधीजी के तीन बंदर अवश्य याद होंगे। उन्होंने इन्हें स्व अथवा अंतर्मन को स्वच्छ रखने के तीन प्रयोगों के रूप में इस्तेमाल किया था। वर्तमान युग में भले इन बंदरों को शांति के इन प्रतीकों के रूप में प्रयोग न बचा हो, किन्तु मेरी दृष्टि में आज भी गाँधीजी के ये तीन बंदर प्रासंगिक हैं। आँख पर हाथ रखे बंदर का प्रतीक है—किसी के साथ अन्याय हो रहा है, कहीं भ्रष्टाचार हो रहा हो तो बिना वजह टाँग अड़ाने के स्थान पर आँखों पर हाथ रख लो। न आपने कुछ देखा और न ही आपकी कुछ जिम्मेदारी बनेगी। आप स्वयं प्रसन्न रहेंगे, दूसरे भी आपसे प्रसन्न रहेंगे।

गाँधीजी का दूसरा बंदर अपने कानों को ढके हैं। आप जहाँ कहीं अपने पक्ष के लोगों की बुराई सुनें, दुखियारे की दर्दभरी बातें सुनें या अन्याय और भ्रष्टाचार के खिलाफ बातें सुनें, अपने कानों पर हाथ रख लें। न आप कुछ गलत होता सुनेंगे, न आपकी नैतिकता जागृत होगी, न ही आपकी कुछ जिम्मेदारी बनेगी। आप स्वयं प्रसन्नताभरी बातें कहेंगे, आपके सम्मुख प्रसन्नवत नहीं बोले जाएँगे।

मुँह पर हाथ रखे गाँधीजी का तीसरा बंदर आज के दौर में सर्वाधिक प्रासंगिक है। गलती से आपने कुछ गलत होता देख सुन भी लिया, तो भी मुँह पर हाथ रख आप अपनी इन गलतियों को छिपा सकते हैं। यों भी आज के युग में जब तक स्वयं का हित प्रभावित न होता हो, तबतक सही को सही कहने के लिए अपने मुँह को कष्ट देना अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मारने के समान है। यदि आप मेरी बात से सहमत न हों तो जरा अपने आसपास बिना योग्यता आगे बढ़नेवालों पर दृष्टिपात करते तो देखें। वे सभी भाग्यवान स्वार्थी नहीं...।

कविता

## गुलाब

–डॉ. संगीता गाँधी,नई दिल्ली,
9716936354

सुनो
वो इक गुलाब जो तुम
जुड़े में सजाती थीं
आज भी मेरे जहन पर हावी है उसक महक
अब तुम उलझी रहती हो
कुछ समेटने कुछ पकाने कुछ सँवारने में
बिखरे बाल तुम्हारे झूलते रहते हैं
जैसे कोई पेचीदा गुथियाँ उलझ गयी हों

इधर–उधर दौड़ती हल्दी लगे कपड़ों के साथ
बेतरतीब उलझी हुई दार्शनिक सी
बहता हुअ
आओ एक बार फिर से चलें समय के पार
जहाँ तुम सजी सँवरी सहज
चंचल अल्हड़ नदी–सी बलखाती
आती थीं मुझसे मिलने
उन्हीं अनुभूतियों के कैनवास में भरता हूँ

वो रंग–जो कहीं कहीं से उड़ गये हैं
एक बार तुम भी मेरा साथ दो
भूले प्रेम पलों का ब्रश थामे
उस 'गुलाब' सजे जुड़े वाली तस्वीर को
फिर साकार कर दो।

कहानी

# बेटी तो बेटी ही है

मनोरंजन सहाय सक्सेना
जयपुर
मो : 4660302770

सेवा निवृत्ति के बाद मिस्टर राव को एक आम भारतीय की तरह आयुजन्य बीमारियों से मुक्ति और मृत्यु के बाद तथाकथित परलोक में सुविधापूर्ण जीवन के उपरांत मोक्ष के उद्देश्य से इस प्रसिद्ध तीर्थनगरी के सुनियोजित प्रचार से अंतर्राष्ट्रीय योग केन्द्र के रूप में ख्यात आश्रम में आए हुए कई साल बीत गये थे, मगर अक्सर वह यहाँ विभिन्न स्वनामधन्य ज्ञानी महात्माओं द्वारा दिए गए धार्मिक प्रवचनों की एकान्त में विवेचना कर समझने की कोशिश में इनके पारस्परिक भयावह विरोधाभास के कारण असफल होकर बेहद खिन्न हो उठते थे।

आश्रम के श्रीमद्भगवद्गीता पर कथित अधिकृत विद्वान श्रीगीतानंद शास्त्री आश्रम के सेवादारों के अनुसार कभी किसी कॉलेज के संस्कृत के प्रोफेसर थे। तब एक दिन स्वाध्याय के क्षणों में उन्हें लगा कि स्वयं भगवान श्रीकृष्ण उन्हें इस कलियुग में उनकी वाणी–'धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे–युगे', का प्रचार प्रसार करने के लिए कह रहे हैं, बस उसी क्षण इन्होंने वह आकर्षक पद त्याग कर खुद को गीता–ज्ञान के प्रचार के निमित्त समर्पित कर दिया।

इसके विपरीत इनके एक अन्य प्रतिर्स्पद्धी आश्रम के गीता–विद्वान का कथन था कि यह किसी कस्बे के प्राइवेट हाई स्कूल में अंशकालीन अध्यापक मात्र थे। पुरोहिताई ही इनकी पैतृक आजीविका थी।

शहर से तवादला होकर आए किसी दोयम दर्जे के अधिकारी की पुत्री को संस्कृत की ट्यूशन देते हुए संस्कृत में आम्रवृक्ष के लिए प्रयुक्त शब्द का छात्रा के शरीर में अवस्थित होने का संकेतों में वर्णन करते हुए बोर्ड की परीक्षा में संस्कृत विषय में उसे परीक्षा के संभावित प्रश्न बता देने का लालच देकर उसके अंग विशेष का रसास्वादन करने के लिए जैसे–तैसे सहमत कर पाये थे कि छात्रा के एकतरफा प्रेम में पड़े एक उद्दण्ड सहपाठी को कुछ भनक लग गई और उसने छात्रा को बता दिया कि शिक्षा विभाग के ताजा निर्णय के अनुसार संस्कृत विषय में सिर्फ पास होना जरूरी है, उसके प्राप्तांकों का छात्र की श्रेणी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा और इतने से नंबर तो वह शास्त्रीजी से ट्यूशन पढ़े बिना भी ला सकती है, फिर भी अगर उसे कोई संदेह है तो उसके बोर्ड के इम्तिहान में संस्कृत का पेपर खुद शास्त्रीजी ही उसे साल्व करायेंगे।

स्कूल में सहपाठी की दबंगई देखकर छात्रा ने उसके आश्वासन को आश्वस्त होकर शास्त्री के प्रस्ताव को ठुकरा दिया और उद्दंड छात्र द्वारा शास्त्रीजी के कारनामे को सार्वजनिक कर दिये जाने पर स्कूल की प्रबंधन समिति ने इन्हें स्कूल की सेवा से मुक्त कर दिया, तो पूर्णकालिक पुरोहिताई करते हुए उन्होंने पहले किसी तरह आश्रम में पहुँच बनाई, फिर आश्रम के संचालक को कमीशन की शर्त पर राजनैतिक व्यक्तियों के धार्मिक अनुष्ठान कराते हुए उनके आश्रय से वह गीता–ज्ञान के प्रचार के पुण्यकार्य के लिए विदेश जाने का अवसर भी भुनाने लगे।

इन्हीं गीतानन्द ने गीता के दूसरे अध्याय के 20वें श्लोक का अर्थ–विदेशी भक्तों की सुविधा और अपने अंग्रेजी ज्ञान की पटुता दिखाने के लिए अंग्रेजी में बताया था–'यह आत्मा किसी भी काल में न जन्मता है और न मरता है, नह यह आत्मा होकर फिर होनेवाला है, क्योंहि यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है और शरीर के नाश होने पर भी नाश को प्राप्त नहीं होता।' उसके शब्दजाल को वह सुलझा नहीं पाये थे कि दूसरे दिन शास्त्रीजी ने उसी अध्याय के 23वें श्लोक का अर्थ–उसे आत्मा का न शस्त्र काट सकते हैं, न आग जला सकती, न वायु सुखा सकती.... बताया तो वे बेहद भ्रमित हो गये कि जिसका न जन्म होता और जो न मृत्यु को प्राप्त होता है, तो उसको शस्त्र से काटने और आग में जलाने का प्रयोजन ही क्या है!

किसी शंका समाधान के लिए धर्मगुरुओं से चर्चा का प्रयास–गुरुजी के प्रति अश्रद्धा बताकर आश्रम से निष्कासन की धमकी से लेकर जिज्ञासु की शारीरिक झाड़–पोंछ तक की संभावना के ज्ञान से मि.राव क्षुब्ध होकर भी ज्यादातर मौन ही रहते थे। वह समझ नहीं पाते थे कि सभी धर्माचार्य श्रीमद्भगवद्गीता को भगवान श्रीकृष्ण की वाणी बताते हुए सभी धर्मग्रंथों का सार मानते हैं, तो अन्य धर्मग्रंथों पठन–पाठन की आवश्यकता क्यों है और इनके कथन में भारी अंतर क्यों है?

इस विरोधाभास धर्मचर्चाओं से पैदा खिन्नता को एक यौवन के ढलान पर आचुकी महिला ने और बढ़ा दिया, जो बेहद सामान्य से कपड़े पहनकर आती और श्रवणार्थियों की भीड़ में सबसे पीछे बैठती थी और प्रवचन समाप्त होते ही सबसे पहले बाहर निकलने को आतुर रहती थी और उनकी नजर पड़ते ही बेहद असहज हो जाती थी। इस महिला को एक दो बार गौर से देखने पर उन्हें भी लगा था कि इसकी शक्लसूरत काफी जानी पहचानी सी लगती है, मगर मगर इसे पहले कहाँ और कब देखा था, याद करने के लिए वह काफी कोशिश करते, पर असफल रहने पर अन्यमनस्क हो जाते थे।

आखिर एक दिन उन्होंने साहस जुटाकर महिला को रोककर उससे पूछ ही लिया–देखो, आप उम्र में मेरी बेटी जैसी हो, इसलिए अन्यथा मत लेना, मगर आपको देखकर लगता है कि आपको पहले कहीं देखा है, मगर ठीक से याद नहीं पड़ता, तो महिला बोली–आप ठीक कहते हैं, आपने मुझे देखा भी है और मुझे जानते भी हैं, मगर आपने अभी कहा कि मैं आपकी बेटी जैसी हूँ, तो आशा कर सकती हूँ कि आप मेरे अतीत को कुरेदकर
बेटी के घाव को हरा नहीं करेंगे। महिला के उत्तर से मि.राव की स्मृतियों के गवाक्ष खुल गये। उन्हें प्रमोशन पाकर इस नये राज्य में आये पहला ही दिन था। वह आफिस सुप्रिन्टेंडेंट से कर्मचारियों के बारे में कुछ पूछताछ कर रहे थे, तभी एक व्यक्ति ने प्रवेश किया। किसी के बिना अनुमति प्रवेश से वह खिन्न हो गये थे, मगर पहली नजर में आगन्तुक को देखकर यह अनुमान लगाना मुश्किल था कि वह पुरुष है या महिला इसलिए वह चुप ही रहे।

ओ.एस. ने आगन्तुक का परिचय देने का प्रयास करते हुए कहा था–सर! आप हैं, तो उसने ओ.एस. की बात को काटकर एकदम सख्त लहजे में कहा था–'आई माइसेल्फ केन इन्ट्रोडयूस मी.' फिर उनकी ओर मुखातिब होकर'–'सर आइ एम विजय सिंह असिस्टेंट एकाउंट आफिसर इन सेक्शन ऑफ माइनिंग ऑडिट एण्ड माइ एक्सटेंशन नंबर इज टू नाइन वन. एनी थिंग योर सर, बिल्कुल बिन्दास अंदाज में कहा तो उन्हें उसका व्यवहार अखर गया था, लेकिन हालात का ख्याल करते हुए–'नो नो इट्स क्वाइट एनफ सो थैंक्यू विजय सिंहजी' कहकर मि.राव ने उसे विदा कर दिया था।

उसके जाते ही ओ.एस. बोला–'सर! यह महिला है और सरकारी रिकार्ड में इसका नाम मिस विजयलक्ष्मी सिंह है, मगर वह अपने नाम के पहले मिस लगाना पसंद नहीं करती है और हमेशा पुरुषों के लिवास में रहना और वैसा ही व्यवहार करना पसंद करती है। आफिस में भी बिन्दास सिगरेट फूँकती है। यह खुद महिला सहकर्मियों से घुलने–मिलने में दिलचस्प नहीं रखती और इनकी महिला कुलीग भी इनसे एक दूरी ही बनाये रखती है; क्योंकि यह किसी भी बात पर उत्तेजित होकर कुलीग को पुरुष की तरह आलिंगन में बाँध लेती है।

आफिस के कई लोगों ने उन्हें शराब की दुकानों में देर रात शराब खरीदते देखा है और दूसरे दिन वह खुद यह बता देती है कि कल उन्होंने फलाँ को फलाँ बाजार में शराब की दुकान के पास देखा था।

इसके बाद कोई छः माह ही बीते थे। उस दिन ऑफिस पहुँचते ही मि. राव को लगा कि कुछ असामान्य घट गया है। उन्होंने आफिस सुप्रिन्टेंडेंट से पूछा, तो उसने बड़े रहस्यमय ढंग से बताया–'सर! मिस विजय सिंघ (आफिस वाले विजय के मध्य नाम सिंह को जोर देकर सिंघ बोलते थे) ने रात को सुसाइड का प्रयास किया है। पुलिस उसके घर पहुँच चुकी है और पुलिसवाले आफिसवालों को बार–बार बुला रहे हैं, मगर सुनने में आया है कि उनकी कोई डायरी पुलिस के हाथ लग गई है, तो किसी को भी जाने की हिम्मत नहीं हो रही है। आफिस में किसी से उसकी पटती तो थी नहीं, इसलिए पता नहीं, उस डायरी में किसके नाम से क्या लिख गयी हो!

घटनास्थल पर मि.राव के पहुँचने पर ए.सी.पी रैंक की महिला अधिकारी ने उन्हें बताया–'सर! मिस विजय ने रात को काफी बड़ी तादाद में नींद की गोलियाँ खाकर सुसाइड का प्रयास किया है, मगर न तो इसके बारे में पड़ोसी कुछ बता रहे हैं, न इसके कमरे की तलाशी में इस कापीनुमा डायरी के अलावा कुछ मिला ही है। इस डायरी में तो कोई फौरी सूचना देनेवाला मेटीरियल है नहीं, मगर इसके मोबाइल में जो भी नंबर मिले, उन सब पर सूचना दे दी है, मगर अभी तक आप ही पहले व्यक्ति हैं, जो आये हैं। क्या इनका कोई नहीं है!

यह मेरे आफिस में असिस्टेंट एकाउंट्स आफिसर है और इसी सरकारी क्वार्टर में रहती है, पंजाब के किसी छोटे–से शहर से है। इसके अलावा इनके बारे में मेरे पास कोई जानकारी नहीं है। मि.राव ने स्पष्ट किया तो ए.सी. पी. बोली–'सर! फिलहाल तो इसको फौरन अस्पताल पहुँचाना है, वहाँ आपको भी मेरे साथ चलना होगा। यह डायरी अभी तफतीब के लिए मेरे पास ही रहेगी। कहकर वह अपनी कार्यवाही में जुट गयी।

विजय सिंह को बचा लिया गया था और उसकी हालत सुधर रही थी, तभी उस दिन दोपहर को आफिस में पुलिस स्टेशन से फोन आया कि मिस विजय सिंह अस्पताल से भाग गई है और पूर्व में उन्होंने ही अधिकृत परिचित के रूप में कानूनी औप चारिकताएँ पूरी की थीं, इसलिए उन्हें फौरन अस्पताल पहुँचना होगा। अस्पताल पहुँचने पर उन्हें बताया गया कि मिस विजय सिंह के खिलाफ आत्महत्या करने का प्रयास और हिरासत से फरार हो जाने का केस दर्ज कर लिया गया है, तो वह खिन्न हो उठे थे। इस घटना के कोई दो माह ही बीते थे कि उन्हें उसी महिला ए.सी.पी का फोन आया और उसने बताया कि उनके कार्यालय से सर्विस रिकार्ड में दर्ज सूचनाओं के अलावा कोई जानकारी मिल नहीं रही है और पुलिस के काफी प्रयासों के बावजूद मिस विजय सिंह का कोई पता नहीं चला है, इसलिए वह एफ.आर लगाकर केस फाइल बंद करना चाहती है, मगर इसमें उनकी भी औपचारिक स्वीकृति चाहिए।

मि.राव ने अधिकारियों की एक संक्षिप्त मीटिंग बुलाकर केस फाइल बंद करने की स्वीकृति मिजबादी। कुछ दिन बाद महिला पुलिस अधिकारी खुद उनके आफिस में आई और बोली'–'सर! फिलहाल मिस विजय की फाइल को बंद करना पड़ा है, उसके लिए हमें खुद है। अगर आपको कभी उनके आफिस में आई और बोली–सर! फिलहाल मिस विजय की फाइल को बंद करना पड़ा है, उसके लिए हमें खेद है। अगर आपको कभी उसके बारे में कुछ पता चले तो पुलिस को बताइएगा जरूर सर! आप स्वयं एक उच्चपदस्थ सरकारी अधिकारी हैं, इसलिए आपसे आगे भी आवश्यक सहयोग की अपेक्षा करूँगी कहकर–घटना के समय पुलिस द्वारा प्राप्त की गई कापीनुमा डायरी उन्हें सौंपकर वह चली गई तो मि.राव को मिस विजय सिंह का ध्यान आ गया।

इस इतनी बड़ी दुर्घटना के बाद भी इस महिला के माँ–बाप भी नहीं आए, ना ही इसके बारे में कोई पूछताछ की, तो आखिर ऐसा क्या है, इस विजय सिंह के जीवन का रहस्य–क्या यह किसी फिल्मी नायिका की तरह अनाथ है! शायद डायरी से ही कुछ मालूम हो सके, इसके बारे में–यह सोचकर उन्होंने वह डायरी खोल दी।

डायरी कभी–कभी कुछ विशेष घटनाओं से उत्पन्न अवसादग्रस्त मनःस्थिति में लिखी गयी लगती थी। बिना किसी तारीख के डायरी के पहले पृष्ठ पर लिखा हुआ था–कैसा भाग्य शाली दिन रहा होगा 13 जुलाई 1964 जब मेरा जन्म हुआ। घर परिवार के बड़े लोगों से सुनती आई हूँ कि इधर नर्स ने पिताजी को मेरे जन्म की सूचना दी और उधर पिताजी के वकील ने आकर बताया कि हड़ताली कर्मचारियों के प्रति सरकारी आदेश के विपरीत नरम रुख अपनाने के आरोप में सरकारी नौकरी से बर्खास्त कर दिये जाने का मुकदमा वह सुप्रीम कोर्ट की डबल बेंच से जीत गये हैं, इसलिए अब सरकार को उन्हें आरोप मुक्त करके इस अवधि के समस्त लाभमय प्रोमोशन के दने ही होंगे। मेरा जन्म सुनकर दादी तो बेहद अनमनी हुई थी, मगर पिताजी ने कहा–अम्मा! अपने घर तो आज साक्षात् भाग्यलक्ष्मी आई है, मैंने तो इसका नाम भी सोच लिया है। मैं तो इसका नाम विजयलक्ष्मी रखूँगा। कहकर उन्होंने सौ रुपये का नोट नर्स को भेंट किया और सारे अस्पताल में मिठाई बँटवा दी थी।

लड़की के पैदा होने पर ऐसा उत्सव उस समय उस समाज में अपवाद ही माना गया था, जहाँ आज भी जन्म से माँ की कोख में ही लड़कियों की हत्या कर देने का रिवाज और धंधा धड़ल्ले से चल रहा है।

मेरे जन्म के तीन साल बीत गये थे। दादी को वंशबेल बढ़ाने के लिए पोते की जरूरत सताती थी, मगर पिताजी तो –'अम्मा! भगवान की मर्जी होगी, तो बेटा देगा। आजकल बेटी और बेटे में कोई फर्क नहीं माना जाबे है, मेरी तो बेटी ही मेरे लिए बेटा ही है।' कहकर दादी माँ को फौरी तौर पर चुप कराके खुश हो लेते थे।

कुछ दिन बाद माँ फिर से उम्मीद से हुई तो दादी उसे एक पहाड़ी पर स्थित हमारे पैतृक धार्मिक स्थल पर ले जाने पर अड़ गई। माँ वहाँ के पुजारी से पुत्रवती होने के आशीर्वाद लेकर और पुत्र होने पर मूर्ति को चांदी का छत्र चढ़ाने का आश्वासन देकर लौट रही थी कि उसका पैर फिसला और वह करीब सौ सवा सौ फीट नीचे लुढ़कने के बाद रुकी तो सब कुछ नष्ट हो गया था। डॉक्टर ने माँ का ऑपरेशन करके मृत भ्रूण को निकालकर कहा था कि अब यह भविष्य में कभी माँ नहीं बनेगी, सुनकर दादी ने तो अपना माथा ठोक लिया, मगर पिताजी बिल्कुल शांत रहे थे।

कुछ दिन बाद दादी ने पिताजी से वंशबेल बढ़ाने की खातिर दूसरा विवाह करने का सुझाव दिया तो पिताजी ने कहा–'अम्मा! एक बार छूटी नौकरी तो विजयलक्ष्मी के भाग्य से मिल गई, क्योंकि मैंने कोई जुर्म किया ही नहीं था, मगर अबकी एक बीबी के होते दूसरी शादी का जुर्म किया, तो नौकरी तो जाएगी ही, फिर वापिस कोई भी अदालत नहीं दिला पायेगी; क्योंकि इस जुर्म में तो जेल जाना पड़ेगा। दादी को जेल जाने की धमकी ने ऐसा डरा दिया कि फिर उसने पिताजी को दूसरी शादी करने की बात नहीं की।

इसके बाद कुछ पृष्ठों पर कुछ अनगढ़–सी चित्रकारी शायद बेहद अकेलापन अनुभव करते पलों में की गई थी, फिर आगे लिखा था–मुझे याद आता है कि अबतक अपने मुहल्ले के बच्चों के संग खेलती थी, मगर इनमें ज्यादातर लड़के थे, सो मैं उनके साथ कंचे, गुल्ली–डंडा वगैरह सब लड़कों के खेल खेलती थी। दादी मुझे देखकर माथा ठोकती, तो पिताजी कह देते–'अम्मा! बच्चा है, फिर अपने तो छोरी है के छोरा, जो है सो जेई है और मैं तो इसे बेटा ही मानू हूँ।' तो दादी बड़बड़ाती हुई तुलसी चौरे के पास बैठकर माला के मनके घुमाते मुझे कोसने लगती थी।

कुछ समय बाद एक दिन पिताजी ने जब मुझे गाँव के प्राइमरी स्कूल में भर्ती कराने की बात कही तो दादी ने टोका– 'क्यों रे छोरी ए कलेक्टर बनावेगो?' तो पिताजी ने बस यह कहा था–'अम्मा! जो चार आखर पढ़ लेगी तो

खाली वक्त में तोय गीता पढ़के सुनायवे करेगी।' और दादी का विरोध नरम हो गया।

मेरा बचपन ज्यादातर लड़कों के साथ बीत रहा था। इसलिए स्कूल के पहले दिन से ही मेरी शिकायतें आने लगीं, क्योंकि जहाँ दूसरी लड़कियाँ क्लास के लड़कों से पिटकर या और किसी तरह सताई जाने पर पी–पीं करके रोने लगती थी, मैं पलटकर हाथ चलाती थी और एक दिन तो मैंने स्लेट मारकर एक लड़के का माथा ही फोड़ दिया था। पिताजी के बोल–'विजय मेरी बेटी नहीं बेटा है, मुझे लड़कों की तरह हमेशा आक्रामक बने रहने को प्रेरित करते थे।

पिताजी रविवार को अवकाश घर पर बिताने के लिए शनिवार की शाम को गाँव आते थे, तो स्कूल के मास्टर भी आते तो मेरी शिकायत करते थे। मगर पिताजी की सरकारी नौकरी की प्रतिष्ठा के कारण और घर के दूध अथवा शुद्ध पकवान खाकर–'साहब! बच्ची को थोड़ा समझाइए।' कहकर पिताजी का आश्वासन पाकर लौट जाते थे।

मैं स्कूल के लड़कों के साथ दौड़ में भाग लेती, कबड्डी खेलती थी। लड़का होने का एहसास मेरे अंदर इस कदर हावी हो चला था कि लड़कों के प्राइमरी स्कूलों के जिला स्तरीय खेल में कबड्डी की टीम में मेरा नाम नहीं होने पर मैं सीधे हेडमास्टर से जा भिड़ी। हेडमास्टर ने समझाया कि बेटी यह लड़कों के स्कूल की प्रतियोगिता है, तो मैंने कहा–मेरे पापा कहते हैं कि मैं उन्ही लड़की नहीं, लड़का हूँ, तो फिर मैं स्कूल की टीम में क्यों नहीं खेल सकती।' हेडमास्टजी ने मुझे टालने के लिए कह दिया–अब, तू देख ले, तू बोल रही है, क्यों नहीं खेल सकती, लड़का ऐसे थोड़े बोलेगा?

तो कैसे बोलता है?मैंने प्रतिप्रश्न किया, फिर बोली–अच्छा, वह बोलता मैं क्यों नहीं खेल सकता, तो मैं बोलती हूँ–मैं क्यों नहीं खेल सकता, अब मेरा नाम टीम में लिखवा दो। हेडमास्टर बौखला गये थे, मेरी बात सुनकर। मगर पीछा छुड़ाने के लिए बोले–'कल अपने पापा से बात कर लीजो, अभी क्लास में जा।

दूसरे दिन मैंने पापा से प्रश्न कर लिया–पापा! आप कहते हो, मैं आपकी लड़की नहीं, लड़का हूँ और खेलवाले मास्टरजी कहते हैं कि मैं दूसरे के पाले में लड़कों ज्यादा टाइम कबड्डी बोलती हूँ तो हेडमास्टर मुझे कबड्डी की टीम में क्यों नहीं रख रहा, तो वह भी एकदम सकपका गये और बात को उन्होंने यह कहकर टाल दिया कि 'मैं अभी छोटी हूँ' अगले साल शहर के स्कूल में डलवा देंगे।

उस दिन दादी, मां और पिताजी में जोरदार कहासुनी हुई। दादी के सामने तो पिताजी ज्यादा बोल नहीं सके, हाँ माँ से यह कहते हुए निकले–तेर तरह विजय को घर–गोबर में ही रमाकर नहकी रखना मुझे, मैंने उसका नाम विजयलक्ष्मी यों ही नहीं रखा, मेरे लिए लड़की नहीं, लड़का है लड़का, समझ ले।

प्राइमरी शिक्षा के बाद पिताजी ने मेरा दाखिला गाँव से दो मील दूर कस्बे के एक स्कूल में करवा दिया और आने–जाने के लिए साइकिल दिलवा दी। इस स्कूल में आकर मुझे खेलकूद की तो ज्यादा सुविधा मिल गई, मगर इतने दिन तक लड़कों के साथ रहते खेलते मुझे लड़कियों में घुलने–मिलने में ही सहजता नहीं लगती थी। मैं जब भी किसी लड़की को कसकर पकड़ लेती और वह अपने को छुड़ाने के लिए संघर्ष के वजाय–'अरी छोड़–छोड़ न, लग रही है' की गुहार लगाने लगती या रोने लगती थी, तो मुझे उन्हें जोर से पकड़कर गिराने और कसकर दबोचने में एक अजब सा आनंद मिलने लगा। पहली ही साल में लड़कियों के स्कूल की जिला स्तरीय प्रतियोगिताओं में मैंने कई पुरस्कार जीतकर स्कूल में अपना सिक्का जमा लिया।

घर पर अब भी जब समय मिलता तो अपने बचपन के साथी लड़कों के साथ खेलने निकल जाती तो अच्छा खासा तनाव सा छा जाता था, मगर थोड़े समय में सब ठीक–ठाक हो जाता था।

ऐसे ही ठीक–ठाक चलते हुए हमारी पैतृक कृषि भूमि काफी बड़ी होने की वजह से कोर्ट के आदेश से उनके पिछले बकाया बगैरह के मिले भुगतान की रकम से पिताजी ने ट्रैक्टर खरीद लिया। अब समस्या ड्राइवर की थी। मैंने देखा कि मेरे हम उमर कुछ लड़के उनके खेतों पर काम करनेवालों की मदद करते करते ही ट्रैक्टर चलाना सीख गये थे, तो मेरे तो घर में ही ट्रैक्टर था। खाली समय में मैंने एक दो जान–पहचान के लड़कों की मदद से ट्रैक्टर चलाना सीखना शुरू कर दिया। मैं जल्दी ही अच्छी तरह ट्रैक्टर चलाने लगी। शुरू में ही दादी ने विरोध किया, मगर एक दिन मैं दादी को ट्रैक्टर पर बिठाकर गाँव से 5 मील दूर दूसरे गाँव के सत्संग में लग गई, तो दादी का विरोध एकदम कम हो गया। अब तो जब भी मौका मिलता मैं गाँव की गलियों में ट्रैक्टर घुमाती फिरती थी। गाँव की औरतों और मेरी हमउम्र लड़कियों को कौतूहल से देखना मुझे बेहद रोमांचित कर देता था।

जब मैं नवीं क्लास में आई तो पिताजी ने मेरी जिद पर अपनी नौकरीवाले महानगर में ही एक बड़े स्कूल में मेरा एडमिशन करा दिया और मेरी जिद पर कोशिश करके हॉस्टल में दाखिला दिला दिया।

हॉस्टल में रहते एक दिन मेरी मामा की लड़की जो इसी शहर में किसी पॉप इंग्लिश स्कूल में पढ़ती थी, मुझसे मिलने आई। पहले तो उसने मेरे स्पार्ट्स ऐचीवमेंट्स पर बधाई दी, फिर मेरे कपड़ों और लंबी चोटियों का मजाक करते हुए बोली–मैडम! खाली स्पोर्ट्स में यह मेडल जीतकर यहाँ नहीं टिक पाओगी। शहर का रहन–सहन और तौर–तरीके सीखो नहीं तो दूसरी हॉस्टलर लड़कियों में मिक्सअप नहीं हो पाओगी। ऐसा मजाक बनाएगी कि याद करोगी।

उसकी बात सुनकर मैं थोड़ा नर्वस होने लगी तो थोड़ी देर चुप रहकर वह काफी नरम होकर बोली–अच्छा तू स्पोर्ट्स इवेंट्स में परफार्म करती है, तो तेरी यह दुम सी चोटियाँ तेरी पीठ पर थपथप करती होगी, तो तेरा कन्सट्रेशन डायबर्ट नहीं होता, तो मुझे पहली दफा अपनी लंबी चोटियाँ बंदर की पूँछ लगने लगी। कुछ दिन के बाद एक बनाये गये प्लान के तहत मैंने अपनी लंबी चोटियाँ कटवा दीं, तो मुझे पहली बार लगा कि पापा भले ही बोले कुछ नहीं हैं, मगर वह मेरे कृत्य से खुश नहीं हैं।

महानगर में गेम्स स्पोर्ट्स के अधिक अवसरों में लड़कों का साथ अधिक मिलने और लड़कों की कुछ चुनौती और उपेक्षाभरी बातों से उन्हें प्रतिद्वन्द्विता में कड़ी टक्कर देने के जुनून में पिता के प्ररेणा वाक्या–'विजय मेरी बेटी नहीं बेटा है', के प्रभाव से मुझे लड़कों के साथ उन्हीं की तरह रहना और व्यवहार करने के साथ ही दूसरी लड़कियों को कसकर आलिंगन करना बहुत अच्छा और रोमांचक लगने लगा। शायद मेरे अंदर विकसित हो रहा लड़का होने का भाव इसके लिए उकसाता था।

कुछ दिनों के बाद का बोर्ड की परीक्षा का फार्म भरते समय मैंने मामा की पुत्री की सलाह पर अपने नाम विजयलक्ष्मी के साथ पिता का मध्य नाम 'सिंह' जोड़ दिया। इसके बाद मैंने उसके कहने पर पिता द्वारा दिया गया 'विजय लक्ष्मी' नाम कागजों में सीमित कर दिया। बाहर मैं अपना परिचय 'मिस विजय सिंह' कहकर देने में बड़ा गर्व महसूस करने लगी थी। फिर धीरे धीरे 'मिस' मिस हो गया और मैं विजय सिंह बन गयी।

विजय लक्ष्मी ने विजय सिंह बनने के कुछ समय बाद मुझे यूनिवर्सिटी के यूथ फेस्टीवल में मुंबई जाने का मौका मिल गया। उन दिनों हमारे नगर से मुम्बई जाने का रास्ता लगभग 24 घंटे का था। हम करीब दस–बारह लड़के–लड़कियाँ थीं। सफर में समय काटने और अपनी मौजूदगी दिखाने के लिए सभी मौजमस्ती कर रहे थे। लड़कियाँ लड़कों के ऊलजलूल बेवकूफी भरे

(अब ऐसा लगता है) कारनामों पर जोर–जोर से हँसने भर का सहयोग दे रही थी। कुछ लड़के शायद मर्दानगी दिखाने को सिगरेट पी रहे थे। अचानक उनमें से एक लड़का बोला–अरे भई विजय सिंह भी तो अपनी जमात का है, उसे भी तो सिगरेट दो। उसकी इस बात पर कुछ लड़कों ने तो टालमटोल की और लड़कियों के तो मुँह खुले तो खुले रह गये, मगर मुझे उसकी बात की चुनौती लगी, इसलिए मैंने कुछ चुनौती भरे अंदाज में ही कहा–हाँ, ला दे। सिगरेट पीना कोई बड़ा काम है क्या?

बड़ा है या छोटा, यह तो पता नहीं, तू पीकर दिखा– कहकर उसने सिगरेट मेरी तरह बढ़ा दी। मैंने सिगरेट लेकर जलाई। पहले कश में जो ठहाका लगा, उससे लड़कों ने जो हँसी उड़ाई तो मुझे और भी जिद चढ़ गई। मैंने थोड़ा रुककर दूसरा कश पूरी सावधानी से लगाया, फिर धीरे–धीरे मैंने पूरी सिगरेट खत्म करके विजयी भाव से उस चुनौती देनेवाले लड़के को देखा, तो लड़के मुँह पर खिसियाहट देखकर मुझे विजयी भाव अनुभव हुआ, मगर लड़कियों के चेहरे पर भाव बड़े असमंजसपूर्ण थे।

यूथ फेस्टीवल के प्रवास में साथी लड़कियों की अपेक्षा और उदासीन व्यवहार से ज्यादा लड़कों के साथ संयम बिताते–मुझे लगने लगा कि लड़के लड़कियों के उभरे वक्ष को ही नहीं घूरते, कुर्ते या ब्लाउज पहने अंतर्वस्त्र की पट्टी की झलक के कारण पीठ को भी घूरते हैं, इसलिए मैंने युवतियों का विशिष्ट अंतर्वस्त्र पहनना ही छोड़ दिया। हालाँकि इसके बाद हॉस्टल के बाहर खेल के मैदान में या और कहीं भी किसी लड़के द्वारा अनजाने या जान बूझकर दिये गये स्पर्श और उसके बाद के कॉमेंट्स से मुझे अपना निर्णय गलत तो लगता था, मगर मेरा अपना परिवेश और 'मैं बेटी नहीं बेटा हूँ' का उद्घोष मुझे कुछ अपवाद करने को उकसाते थे। यूथ फेस्टीवल से लौटने तक मैं लड़कों की तरह जमकर सिगरेट पीने लगी थी, मगर इसी बीच टीम की साथी लड़कियों ने मुझसे दूरी बना ली थी, जिसकी मैंने कोई परवाह नहीं की।

समय बीतता गया और यूनिवर्सिटी में मेरे आखिरी साल में मैं स्टेट टीम में सिलेक्ट हो गयी थी, तभी केन्द्रीय सरकार के विभाग में खिलाड़ियों की भर्ती का विज्ञापन आया। मैंने भी आवेदन कर दिया और मैं सिलेक्ट भी हो गयी। अब तो जिंदगी एकदम स्वछन्द हो गई आफिस में काम तो नाममात्र था, अब नेशनल टीम में खेलना ही मेरा जिंदगी का लक्ष्य बन गया।

नेशनल टीम में तो नहीं खेल पाई, हाँ, दीवानगी इस जुनून में उमर जरूर बढ़ती गई। दादी माला के मनके फेरती, मुझे कोसती मगर याद करती स्वर्ग सिधार गई। पापा रिटायमेंट के बाद मेरे मर्यादाविहीन उच्छृंखलता से त्रस्त होकर पछताते हुए अपने पूर्व निर्णय के अनुसार मम्मी के साथ उत्तराखंड के किसी सुदूर तीर्थनगरी में बस गये। अब वह कहते थे कि उन्होंने मुझे लड़की की जगह लड़का मानकर पाला, तो उसका मतलब लड़कियों के साथ शिक्षा और पालन–पोषण में हो रहे भेदभाव से मुक्त रखना था, प्राकृतिक और सामाजिक अनुशासन उद्दंड छेड़छाड़ नहीं था।

समय बीतते हुए तो उम्र के खेल पर हावी होने और कुछ नये खिलाड़ियों के आने से और कुछ साथी महिला खिलाड़ियों के साथ उनके अनुसार असहज व्यवहार की बार–बार शिकायत से विभाग की टीम से नाम हट गया, मगर कभी–कभी किसी टूर्नामेंट में टीम मैनेजर के रूप में लड़कियों के टीम के साथ जाने का अवसर मिल जाता था। ऐसी यात्राओं में जब कभी किसी पुरानी टीममेट या क्लासमेट से मिलना हो जाता, जो अपने एक दो बच्चों और पति के साथ एक सुखद सुरक्षित रक्षा–कवच के साथ जिंदगी से पूरी तरह संतुष्ट दीखती थीं, तो उस दिन कुछ समय तो दिल और दिमाग में ऐसी हलचल होती थी कि मैं बेहद उदास हो जाती थी, मगर फिर पुरुष साथियों का सान्निध्य पाते ही–मैं अपनी जिंदगी अपने मनचाहे तरीके से जी रही हूँ, इसमें किसी का दखल नहीं है, यह सोचकर मैं संतुष्ट हो जाती थी, तब मुझे दूसरी औरतें बेहद बेचारी लगने लगती थी।

जिंदगी इसी ढर्रे पर चल रही थी कि एक टूर्नामेंट में टीम का लेकर दक्षिण किसी सुदूर नगर में जाना हुआ। दूसरे प्रांत से आये और सफर के दौरान परिचित हुए दो तीन अन्य टीम मैनेजर के साथ मिलकर अपने लिये खाने–पीने का इंतजाम करने के लिए स्टेडियम के चौकीदार को एक अलग कमरा अनधिकृत रूप से खोलने को मना लिया था।

जाड़े के समय में दक्षिण भारत में इस नगर में ज्यादा सर्दी नहीं होने से रात बड़ी खुशगवार थी, जो जमकर पीते और पीने के बाद खाना खाने में आधी रात हो गयी। सोये हुए थोड़ी देर हुई थी कि मुझे लगा कि कोई मेरी शर्ट की बटन खोल रहा है। पहले तो मैंने खुमारी का भ्रम समझा, मगर जब हाथ धीरे–धीरे मेरी गोलाइयों को सहलाने लगे तो मुझे रोमांचक गुदगुदी होने लगी। थोड़ी देर में शायद मेरा विरोध न होने से शर्ट के सारे बटन खुल गये और सहलाने की क्रिया धीरे–धीरे बलपूर्ण दबाव में बदलने लगे, तो मैंने धीरे से उसका हाथ पकड़ा और बोली–अरे यार! मजाक की हद होती है, तुम तो बहूदगी पर उतर रहे हो।

मेरी बात सुनकर वह हाथ रुका नहीं, बल्कि मेरे होठों को अपने होंठों में दबाकर चूमते रहे, अपने बाजुओं में जोर से कस लिया तो मुझे एक मीठी सी कसक महसूस हुई और मैं आनंदविभोर होकर देर तक उसे चुपचाप महसूस करती रही।

मेरे मौन को मेरी सहमति मानकर वह बोला–'अब सीधी हो जाओ विजय सिंह! अच्छा तो तुम्हें भी लग रहा है न, अरे साड़ी की जगह ट्रेकसूट का पतलून पहन लेने से लड़की लड़का थोड़े ही हो जाती है।' कहते हुए उसने मेरे ट्राउजर को खींचा तो उसके आखिरी शब्द मेरे कानों में पड़ने से अभी तक हो रही एक आनंददायक गुदगुदी एकदम हवा हो गयी।

'मैं लड़की हूँ क्या', मगर पापा तो कहते थे कि...सोचते हुए एक बिजली सी कौंध गयी मेरे अंदर से। मैंने उसे जोर लगाकर धकेला और उसको तीन–चार हाथ भी जमा दिये तो वह आदमी–अरे! अभी तो तू मजे ले रही थी, अचानक तुझे क्या हो गया, कहते हुए चला गया, मगर बाकी साथियों को गहरे नशे में खूँखार खर्राटे भरते देख मैं स्वयं को अजीब सी हालत में फँसा हुआ महसूस करने लगी। अब आधी रात के बाद अपनी टीम के लिए आरक्षित कमरे में तो जा नहीं सकती और अगर इस कमरे में ही रही और मेरी नींद लग गई तो यह आदमी दुबारा आया और मेरी नींद में उसने फिर वही हरकत की तो... सोचते हुए, उसके रोमांचक आलिंगन पाश की कसक भी याद करते मैं बाकी रात सो नहीं सकी।

दूसरे दिन सुबह मैं खिलाड़ी लड़कियों को स्टेडियम एक्सरसाइज करवाने और खुद जॉगिंग के लिए पहुँची तो सिर बेहद भारी था। खिलाड़ी लड़कियों ने खुद प्रैक्टिस में व्यस्त हो गयी, मगर मुझे चलने में लड़खड़ाहट हो रही थी तो मैं थोड़ी देर के लिए जमीन पर ही बैठ गयी, तभी रातवाला आदमी जॉगिंग करते हुए मेरे पास आया और बोला–'आर्गनाइजर से मिलने कब जा रहे हो विजय सिंघ, साथ तो चलोगी नहीं'–कहकर वह कुटिलता से मुस्कुराया।

'मैं क्यों जाऊँ' आर्गनाइजर के मिलने, उसने क्या मुझे बुलाया है, मैंने थोड़े अक्खड़पन से कहा तो वह आदमी उसी कुटिलता से बोला–अभी नहीं बुलाया तो थोड़ी देर में बुला लेगा। तो मैंने फिर थोड़ा गुस्से से ही पूछा–आपको कैसे मालूम है कि आर्गनाइजर मुझे बुलाएगा। मेरा प्रश्न सुनकर वह आदमी बोला–आप रात की बात यहाँ के लोकल स्पोर्टस अथोरिटी को अपने को विक्टिम और मुझे कल्प्रिट बताने के लिए नमक–मिर्च लगाकर बताओ, इससे अच्छा है, मैं ही उन्हे बता दूँ–यह सोचकर मैंने यहाँ के

आर्गनाइजर से मिलने का टाइम माँग लिया है। अब आर्गनाइजर को बात पता चलेगी तो सबको पता चलेगी ही। प्रेस कांफ्रेंस की नौबत भी आ सकती है। तब आप तो मेरी बेहूदगी को विस्तार से बखानोगी, तो मुझे भी अपनी सफाई में रात को आपके पीकर बहक जाने की बात सबके सामने कहनी ही पड़ेगी। आपने तो रात को इतनी पी थी कि अभी भी ब्रेथ एनालाइजर का टेस्ट का ही काफी है और ब्लड टेस्ट हुआ तो फिर राम ही जाने। कहते हुए जॉगिंग करते हुए आगे बढ़ गया।

सारी बात सुनकर मुझे चक्कर सा आ गया। थोड़ी देर में कुछ स्वस्थ हुई तो रात की सारी बात याद आने लगी। हमने दो बीयर पी ली थी, तब तो वह आदमी बोला था–'यार! ये बीयर तो एकदम जनानी चीज है, सब कुछ मर्दोंवाली चीज हो जाए' कहकर उसने अपने बैग से रम की बोतल निकाली थी। व्हिस्की का तो मुझे अभ्यास था, मगर रम के नशे का पता नहीं था, मगर मर्दोंवाली चीज की बात को चुनौती मानते हुए उत्तेजना में भी बिना सोचे समझे दो लार्ज पेग पी गई थी। अब यह भी याद आ रहा था कि वह व्यक्ति खुद कम पी रहा था, पिलाने की मेहमान नवाजी ज्यादा दरियादिली से कर रहा था।

सब कुछ याद करते हुए मैं थोड़ी देर सन्न सी अवस्था में बैठी रही। समझ में नहीं आ रहा था क्या करूँ?जैसा यह कहकर गया है, अगर वैसा सचमुच हुआ तो यह बात सबको मालूम हो जायेगी कि विजय–विजय लक्ष्मी है। प्रेसवाले इस चटपटी खबर बनाने के लिए तरह–तरह के प्रश्न उछालेंगे। मेडीकल टेस्ट के लिए खून का सेंपल लिया जाएगा। क्या पता बात बढ़ने पर कोई उसके आगे बर्जिनिटी टेस्ट जैसी बेहूदा बात भी करने लगे। अब रात के उसके शब्द–'साड़ी की जगह ट्रेकसूट या पतलून पहन लेने से लड़की लड़का तो नहीं बन जाती।' मेरे कानों में गूँज रहे थे, तभी जॉगिंग का राउंड करता हुआ मेरे पास से गुजरा और जैसे ही उसने कनखियों से मेरी तरफ देखा तो मैंने ही उसे आगे बढ़कर रोककर कहा–सुनिये।

'बोलो।' उसने कुछ इस रुखेपन से कहा कि मानो मैं समकक्ष टीम मैनेजर नहीं, कोई टीम की ट्रेनी होऊँ। मगर गरज मेरी ही थी, इसलिए मैंने बड़ी नरमी से कहा–'देखिये, रात को कुछ नशे में और गुस्से में आपपर हाथ चला दिया, मगर आप भी तो सभ्यता और शालीनता की सीमा को तोड़ने लगे थे। फिर भी मैंने मामला आपस में ही निगट गया–यह मानकर किसी से कोई चर्चा ही नहीं की, फिर–यह लोकल स्पोर्ट्स अथोरिटी से शिकायत और प्रेस कांफ्रेंस की बात क्यों'–कहते–कहते मैं थोड़ा नर्वस होने लगी थी, तो वह बोला–'सुनो विजय सिंघ जी! तुम कौन सी सीमा की बात कर रही हो। तुम भी खुद प्रकृति की सीमा को ही तोड़ रही थी। 25 साल हो गये, टीमों के साथ घूमते–घूमते। पिछले दस सालों से टीम मैनेजरी कर रहा हूँ, मगर आप जैसे मैनेजर से पहली दफा मिलना हुआ है।' कहकर वह थोड़ी देर चुप रहा और कुछ दूसरे टीम मैनेजर्स को आते देखकर मुझे अनुगृहीत करते हुए मुझे सान्त्वना देकर अनुगृहीत करने जैसे स्वर में बोला–'अच्छा चलो छोड़ो।' अब अगर आप अफसोस कर रही हो, तो बात यहीं खत्म कर देते हैं, कोई बात हुई भी तो मैं ही सँभाल लूँगा सबको, पर – बात अधूरी छोड़कर उसने मेरी तरफ बड़ी कुटिल मुस्कुराहट से देखा और चुप हो गया।

पर–मुझे क्या करना होगा?मैंने समझौता करने के लिए समर्पण जैसे स्वर में पूछा, तो वह उसी कुटिलता से मुस्कुराते हुए बोला–आपको तो इतना ही करना है कि बाहर से विजय सिंह, मगर अपने अंदर से विजयलक्ष्मी ही बनी रहो और उसी सीमा में रहो। इसके अलावा अगर अभी तक इस घटना का जिक्र किसी से नहीं किया है, तो अब किसी से करना भी मत। नहीं तो ऐसी मुसीबत में पड़ जाओगी और वह फजीहत होगी कि याद करके भी अफसोस करोगी। ध्यान रखना, कहकर वह कुछ अन्य कोच को आते देखकर जॉगिंग करते हुए आगे बढ़ गया।

मैं अपनी ही करनी के जाल में फँसी हुई होने की वजह मैं खून का घूँट पीकर चुप रह गई। इस भारी तनाव के कारण मुझे चक्कर आने लगे तो तुझे हॉस्पीटल ले जाया गया, बड़ी राहत महसूस हुई–यहाँ के लेडी डॉक्टर कभी मेरी सहपाठी ही थी। मुझे देखकर पहले तो व्यंग्य से मुस्कुराई, मगर मैंने जब उसे रात की घटना को थोड़ा फेर बदलकर हमपेशाओं की एक सामान्य मनमुटाव हो जाने की घटना के रूप में बताकर कहा कि मैं अब 2–3 दिन इस आयोजन से दूर रहना चाहती हूँ, तो शायद स्त्री सुलभ सहानुभूति से उन्होंने महिलाओं के प्राकृतिक मासिक धर्म चक्र में कुछ गड़बड़ी के कारण बताकर मुझे दो–तीन दिन चिकित्सकीय देखरेख में रहने की आवश्यकता बताकर अस्पताल में भर्ती करके रख लिया तो मुझे लगा कि आज लड़की का लड़की होना ही निरापद उपाय बना।

खिलाड़ियों की सूची से नाम कट जाने पर उन्हें दी जानेवाली सुविधाएँ भी समाप्त हो गयीं और विभाग में सामान्य कर्मचारियों की तरह काम लेना शुरू कर दिया गया। सेक्शन में मैं अब सामान्य ए.ए.ओ. थी।

आफिस में स्पोर्ट्स कोटे से आनेवाली मैं अकेली ही नहीं थी। वॉलीबाल की स्टेट खिलाड़ी रही आयशा थी, तो कभी हॉकी के स्टेट खिलाड़ी रही सुनीता भी थी, मगर सहयोगी बात– बात में मेरा ही मजाक उड़ाते–'विजय सिंह तो शॉट खेलने में महारथी हैं' और कुछ शॉट खेलनेवाली बात कहकर अर्थपूर्ण मुस्कान से एक आँख का कोना दबा लेते थे तो मुझे बड़ा अटपटा लगता था। शायद इसकी वजह थी कि स्पोर्ट्स कोटे से आनेवाली अन्य महिलाकर्मी आफिस में रोजाना एक आम घरेलू महिला जैसी ही लगती थी। हाँ, खेलकूद के इवेंट्स के दिनों में उनके परिधान बगैरह से वह पूरी स्पोर्ट्स पर्सन लगती थी।

अब बदलते समय के अनुसार अपने को ढालने के प्रयास में मैंने अपनी महिला सहकर्मियों से मेलजोल बढ़ाकर उनमें घुलने–मिलने के प्रयास में पहले आयशा से दोस्ती बढ़ाने के लिए उसे ईद पर मुबारकवाद पेश करने के लिए उसे कसकर गले लगाया, तो आदत के मुताबिक उसे देर तक अपने आलिंगन पाश में कसकर रखना चाह रही थी, मगर आयशा दो तीन सेकेंड के बाद ही होले से मुझे लगभग धकेलते हुए मेरे मुँह के सामने अपना हाथ रखते हुए कह दिया–'विजय जी! प्लीज छोड़िये भी। आपके मुँह से सिगरेट की बदबू आ रही है।' और वह दूसरे लोगों की मुबारकवाद स्वीकार करने लगी।

सुनीता से घुलने–मिलने की कोशिशि का परिणाम तो और भी दिल दुखानेवाला निकला। मैं अक्सर किसी फाइल में कुछ समझने के बहाने उसके पास जा बैठती। मगर वह मुझे संक्षिप्त–सा उत्तर देकर जबर्दस्ती व्यस्त होने का नाटक करने के लिए अपनी ही कोई फाइल खोलकर बैठ जाती। एक दिन मैंने उसे ऐसे ही कहा दिया–'सुनीता! यार तुम मुझे एवाइड क्यों करती हो?' तो पहले तो वह बोली–'आपको लगता होगा, मेरे पास मेरा अपना काम भी तो है।' मगर फिर दूसरे दिन ही मैंने उससे फिर कोई बात पूछनी चाही तो वह बोली–'आप पूरी फाइल पढ़ती क्यों नहीं हो, फाइल पढ़ोगी तो समझ में आएगा, काम करने की आदत डालो।'

'आप मेरी मदद नहीं करना चाहती, क्योंकि आप मुझे अवाइड करती है।' मैंने उसे मनाने लिए कहा, तो वह खुल ही पड़ी, बोली–विजयसिंह जी! हमारे गाँव में एक पुरानी कहावत है–समझदार को छाणे चुग के लाने को बोलते नहीं है, चूल्हे के पास खाली टोकरा पटक देते हैं, मगर आप समझना नहीं चाहती तो अब मैं साफ बोल देती हूँ कि आपसे मित्रता बढ़ाने में कोई महिला उत्सुक नहीं होगी; क्योंकि महिला की अंतरंगता महिला से होती है और आप अपने को महिला मानती ही नहीं हैं। मैं भी गेम्स कोटे से आई हूँ। स्टेट खेल रही थी, तभी सिलेक्शन हुआ था। मैंने भी चार साल डिपार्टमेंट की टीम को रिप्रेजेंट किया। टूर्नामेंट में ही पैर में फ्रैक्चर होने से गेम छूट गया। अब घर परिवार और

केरियर पर ध्यान दे रही हूँ, आप भी यही करें।

सुनीता का लंबा व्याख्यान सुनकर एकदम मेरे मुँह से निकला–'गो टु हेल यू पुअर गर्ल।' और मैंने अपनी सीट पर आकर एक सिगरेट जलाकर उसका धुआँ इरादतन उसकी और छोड़ा था। आधे घंटे में ही एडमिनिस्टेटिव आफिसर ने अपने कमरे में बुलाकर कहा–'हॉल में नो स्मोकिंग की चेतावनी के बोर्ड लगे हुए हैं।'

'हाँ, मगर क्या सभी चेतावनियों का पालन की जाती हैं?मैंने तल्खी से जवाब दिया तो वह मुझसे अधिक तल्ख आवाज में बोले–'आप अपने को समझती क्या हैं मिस विजय सिंघ। मरदों की तरह कपड़े पहनकर सिगरेट फूँकने से आप मरद नहीं बन जाओगी। तमाम महिलाकर्मी आपके विरुद्ध तरह–तरह की शिकायतें करती हैं, मगर मैं जैसे–तैसे उन्हें ही समझा देता हूँ। मगर आज सुनीता ने आपकी जो शिकायत की, वह किसी भी सार्वजनिक स्थान पर किसी को इरादतन छेड़छाड़ की परिभाषा में आती है। मैं आपको अभी जुबानी वार्निंग दे रहा हूँ और सलाह दे रहा हूँ कि आप छुट्टी ले लें और किसी अच्छे साइकेट्रिस्ट से अपना इलाज करायें। मैं इस विषय में अधिक नहीं जानता, मगर आपकी हरकतों से लगता है कि आप दोहरे व्यक्तित्व की उलझन में परेशान हैं।' ए.ओ.के कमरे से निकली तो मैं बेहद परेशान थी। मैंने आधे दिन की छुट्टी का आवेदन किया और घर चली आई। इसके बाद दो हफ्ते तक छुट्टी पर रही। आफिस आने का मन तो क्या, साहस ही नहीं हुआ।

दो सप्ताह के बाद आफिस पहुँची तो एक नई लड़की ने हमारी सेक्शन में ज्वाइन किया। स्पोर्टस कोटे में सिलेक्ट हुई यह नई लड़की पहले दिन ही आम लड़की तरह दबी, सकुची, सहमी ही नहीं, बड़ी ही आत्मविश्वास और पुलक से भरी हुई थी। ज्यों ही वह मेरे पास आई, तो उसने मेरे कपड़े और मेरे हाथ में लगी सिगरेट को देखकर असमंजस में 'गुड मार्निंग सर!' कहकर मेरा अभिवादन किया। उसमे मुँह से सर सुनते ही न जाने कैसी प्रतिक्रिया हुई मेरे अंदर। मैंने–'वेलकम टु दिस आफिस' कहते हुए उसे आलिंगन में बाँध लिया। लड़की एकदम तो भौचक्की सी हो गयी, फिर मुझे धकेलते हुए अपने को मेरे आलिंगन पाश से मुक्त करते हुए बड़े रुखे स्वर में बोली–'सर! थैंक्स योर कॉम्प्लीमेंटस बट प्लीज कंट्रोल योरसेल्फ।' कहकर सुनीता की केबिन में जाकर बैठ गयी।

नई लड़की का व्यवहार मुझे कहीं अंदर तक हिला गया। मैंने लंच टाइम का बड़ी बेसब्री से इंतजार किया, फिर आधे दिन की छुट्टी लेकर घर आ गयी। अब मैंने वास्तव में एक अच्छे मनोचिकित्सक की तलाश शुरू की, क्योंकि आफिस में यह चर्चा होने लगी कि मिस विजय सिंह लेस्वियन है, जो कम से कम हमारे देश में महिलाओं के लिए तो कोई गर्व की बात न तो थी, न है, भले ही कुछ अपरिपक्व शिक्षित युवक युवतियाँ सिर्फ प्रचार के लालच में इसके संबंध में परिचर्चाओं और जुलूसों में इसका प्रबल समर्थन करते नजर आए।

जल्दी ही मुझे एक मनोचिकित्सक का पता मिल गया। मनोचिकित्सक से कई काउसिलिंग के बाद बताया गया कि बचपन में लड़कों के साथ ज्यादा मेलजोल और पिताजी के प्यारभरे जुमले–'मेरी विजय बेटी नहीं बेटा है' ने मेरे बाल अवचेतन पर गहरा असर किया और मैं स्वयं को लड़का समझने लगी। मगर प्रकृति ने मुझे शरीर तो लड़की का बख्शा था, तो मन में भावनाएँ और संवेदनशीलता भी लड़की की ही है, मगर खुद को लड़का समझने के विचार से दिमाग में एक ग्रंथि बन गयी है, जिससे मैं दोहरे व्यक्तित्व की ऊहापोह का शिकार हो गयी थी।

मनोचिकित्सक की काउसिलिंग दो महीने चलती रही, फिर उसने मुझे कुछ समय किसी अज्ञात स्थान पर वास करने और कुछ योग के आसन करने और सामान्य महिलाओं की तरह कपड़े पहनने तथा रहने की सलाह दी।

मनोचिकित्सक की सलाह पर मैं मंसूरी चली गयी। वहाँ एक कॉटेज किराये पर लेकर रहने लगी। करीब एक माह आराम से गुजर गया। एक दिन कुछ खरीददारी के लिए बाजार गई थी, वहाँ अचानक मेरे बचपन का दोस्त दलपत मिल गया, जो यहाँ फोरेस्ट डिपार्टमेंट में कोई मध्यम दर्जे की नौकरी कर रहा था और अकेला ही रहता था। बचपन का दोस्त था, सो औपचारिकता के नाते मैं उसे अपने साथ घर ले आई।

दलपत तो उस दिन के बाद रोज मेरे घर आने लगा। बचपन का साथी मिलते ही मेरा अतीत लौट आया। वह शाम को आता तो कभी किसी जंगली पक्षी का शिकार करके लाता तो कभी यमुना के मीठे पानी की स्वादिष्ट मछली और खासतौर पर मिलिट्री कैंटीन में प्राप्य व्हिस्की का कोई दुर्लभ ब्रांड। मैंने मनोचिकित्सक की हिदायतें ताख पर रख दीं। पुराने दिन लौट आए। एक महीना बीत गया। उस दिन शाम को दलपत आया तो बोला–'विजय! थोड़ी देर में बर्फ गिरेगी, बरामदे में बैठकर पहला स्नोपात देखेंगे।' थोड़ी देर में वर्षा शुरू हो गयी। दो गिलासों में व्हिस्की डालकर मैं और दलपत बरामदे में कुर्सियों पर बैठ गये। व्हिस्की की चुस्कियाँ के साथ रुई के फाहों सी गिरती बर्फ अद्‌भुत था। व्हिस्की के घूँटों के साथ मेरे अंदर एक मद्धम सी आग तेज होने लगी थी।

अचानक दलपत खड़ा हुआ और मेरा हाथ खींचकर बोला–'अरे यार! चल, बाहर चलकर स्नोफॉल एनजॉय करते हैं।' मैंने कोई विरोध नहीं किया। हम थोड़ी देर गिरती बर्फ में भींगते रहे। अचानक दलपत ने मुझे कम्पाउंड में ही घने पेड़ के नीचे खींच लिया और मुझे अपने बाहुपाश में कस लिया। पता नहीं, व्हिसकी का असर था या मौसम का जादू मैं कोई विरोध नहीं कर सकी। मेरे शरीर के अंदर एक कसकभरी सिहरन दौड़ गई। थोड़ी देर दलपत मुझे यों ही आलिंगन में बाँधे, फिर बोला–'व्हिस्की खतम हो गयी और लेकर आता हूँ और वह फिर से गिलासों में व्हिस्की डालकर ले आया। अब हम आन द राक्स की तर्ज पर विद द स्नो बड्स व्हिस्की का आनंद ले रहे थे।

व्हिस्की की अंतिम चुस्की लेकर मैंने गिलास नीचे रखा तो दलपत ने मुझे फिर से कसकर आलिंगन में बाँध लिया और एक बड़ा चुम्बन मेरे होंठों पर कस दिया। पता नहीं आज क्या हो रहा था, मैं दलपत की हरकत का कोई विरोध कर ही नहीं पा रही थी। एक सनसनी एक मीठी–सी झनझनाहट महसूस हो रही थी, फिर भी मैंने उसे नरमी से अलग करते हुए बोला–'कॉटेज बिल्कुल रोड पर है, कोई देख लेगा। तू तो पागल हो रहा है।' और कॉटेज के अंदर तरफ बढ़े तो दलपत मुझे आलिंगन में बाँधे हुआ था। तो इससमय पता नहीं क्यों फिल्मों में देखे गये दृश्यों में नायिका के रूप में एक लड़की की तरह मुझे यह सब कुछ अच्छा लग रहा था। दलपत शायद मेरा अतीत याद करके थोड़ा असमंजस में तो था, मगर वह अवसर का पूरा फायदा उठाकर मुझे बारबार कसकर आलिंगन में बाँध लेता था।

आलिंगन में बँधे हुए हम घर के अंदर आ गये, फिर थोड़ी में खाना खाकर हम फायर–प्लेस के सामने ही रजाई ओढ़कर लेट गये, मगर आज फायर प्लेस के अंदर जैसी आग मुझे मेरे अंदर जलती सी महसूस हो रही थी। पता नहीं कब आँख लग गई। अचानक मुझे लगा कि कोई मेरे वक्ष को सहला रहा है। एक गुदगुदी सही महसूस हुई और मैं आँखें बंद किये हुए महसूस करती रही। मेरे मौन से उसका हौसला बढ़ता गया। वह बारबार मुझे आलिंगन में कसकर मेरे होंठों को होंठों में दबाकर चूसने लगा। थोड़ी देर सब कुछ सामान्य सा चलता रहा, तो उसने मेरी सहमति मानकर मुझे पूरे जोर से आलिंगन में कसा और अधोवस्त्र से छेड़छाड़ शुरू की। बस तभी पता नहीं मुझे क्या हो गया। अभी तक तो सब कुछ मुझे बेहद रोमांचित कर रहा मेरे तन मन को झनझना रहा था, मेरा अधोवस्त्र खींचते ही मुझे एकदम लगा कि इसे तो मैं लड़की लग रही हूँ, मगर मैं विजयलक्ष्मी नहीं, विजय सिंह हूँ, पापा की बेटी नहीं, बेटा हूँ।' बस सारी आनंद की अनुभूति हवा हो गयी। मैंने उसे जोर से

धक्का दिया और दो तीन हाथ जड़ दिये।

दलपत बस इतना ही बोला–'तू अपने को बदल हीं सकी ना, पता नहीं तुझे कब अहसास होगा कि तू एक लड़की है और जवान लड़की के शरीर को कुछ खास लम्हों में एक आदमी जिस्म की जरूरत होती है। जा, अब सो जा, अगर सो सके तो!'

दलपत की बात में चुनौती को मानकर मैं करवट बदलकर सोने की कोशिश में लग गई, मगर मुझे तो बाकी पूरी रात नहीं आई ही नहीं। रह–रहकर दलपत की बात मेरे मन को काँचती तो मुझे चुम्बनों की वह गुदगुदी याद आती और मैं बार–बार दलपत को देखती, मगर वह सब कुछ भूलकर असम्पृक्त सा सो गया था। दलपत उस रात के बाद नहीं आया।

कुछ दिन बाद मैंने मसूरी का वह मकार छोड़ दिया और ऋषिकेश आकर फिर से एक योग आश्रम ज्वाइन कर लिया। योग से मैंने मन को उद्वेलित करनेवाली भावनाओं को कंट्रोल करने में सफलता भी मिलने लगी। संतुलित शाकाहारी सामान्य भोजन ने भी शायद इसमें अच्छा योगदान किया। आश्रम में एक महीना बीत गया। मैं अपने को एकदम सामान्य–सा महसूस करने लगी, तो मैंने लौटकर आफिस ज्वाइन कर लिया।

ज्वाइन किये हुए दो महीने हो गये थे। मैं उस दिन एक्जिक्यूटिव सूट पहनकर आफिस आयी थी। मैं किसी से फोन पर बात कर रही थी कि एक नई लड़की ने मेरे केबिन में प्रवेश करने के पहले औपचारिकतावश, पता नहीं मेरी वेशभूषा के कारण या आफिस के किसी शरारती कर्मचारी की प्रेरणा से 'मे आई कम इन सर' कहकर अंदर आने की आज्ञा चाही तो 'सर' शब्द से एक उत्तेजना सी भर गई मेरे अंदर, उस आकर्षक कद– काठी की युवा लड़की को देखकर। मेरे टेबल के सामने खड़े होकर जैसे ही उसने कहा–'गुड मार्निंग सर! दिस इज माइ ज्वाइनिंग रपोर्ट' तो दुबारा 'सर' सुनकर तो मैं अपने पर काबू नहीं रख सकी। मैं कुर्सी से उठी, लड़की को हाथ पकड़कर बोली–'वेलकम, वेलकम टू दिस सेक्शन मिस...और उसे कसकर अपने आलिंगन में बाँध लिया।'

लड़की एकदम स्तंभित हो गई–सर! यह क्या कर रहे हैं, आप छोड़िये न प्लीज, यह कोई तरीका है, न्यू कमर्स से बिहेव करने का।' कहते हुए वह ए.ओ. के कमरे की तरफ चल दी, तो मुझे पता लगा कि कमरा घूम रहा है। अभी ए.ओ. कमरे में बुलायेंगे, फिर वही लंबा लेक्चर देंगे, आफिस के सभी लोग मुँह फेरकर हँसेंगे, कुछ कनवतियाँ होंगी और और...सोचते सोचते सिर में भयंकर पीड़ा होने लगी। मैंने तुरंत उस दिन की छुट्टी की एप्लिकेशन भिजवा दी। अब मेरी हिम्मत कार ड्राइव करने की नहीं रही थी, सो बाहर निकलकर एक टैक्सी रोकी और घर आ गई।

घर पर माँ–बाप या अन्य कोई सगा संबंधी तो था नहीं, जो तबियत पूछता और कुछ सांत्वना देता, सो सीधी बिस्तर पर पड़ गई। दर्द से जब सिर फटने लगा तो मैंने गोली खाने के लिए पानी लेने को फ्रिज खोला। आश्चर्य! पता नहीं कब की खरीदी हुई एक व्हिस्की की, करीब आधी बोतल मिल गई। मैंने जल्दी से एक बड़ा पेग बनाया और गले से नीचे उतार लिया। आग की एक लकीर सी खींचती चली गई गले से पेट तक। फिर बोतल कब खाली हो गई पता नहीं। मगर न तो व्हिस्की का नशा हो रहा है और न सिरदर्द कम हो रहा है, इसलिए मैंने टेबल की दराज से नींद की गोली की शीशी निकाली। मैं गोली निगलने लगी हूँ–एक, दो, तीन, चार, पाँच....मेरे हाथ काँपने लगे हैं पानी की काँच की बोतल हाथ से छूटकर गिर गई है, झन्न की आवाज से टूट गई है शायद, सब कुछ टूट रहा है, मुझे नींद आ रही है और मुझे नींद आ जाए इसलिए मैं आज किसी कवयित्री के शब्दों में–'इस असीम तम में मिलकर मुझको पलभर सो जाने दो।'

भगवान से प्रार्थना कर रही हूँ–दोहरे व्यक्तित्व का भार ढोते–ढोते थक गई हूँ, मेरे देव! मेरे ईश्वर! आज मुझे अपनी असीम गोद में सिर रखकर पल भर सो जाने दे, मेरे देव!

डायरी यहाँ आकर खतम हो गयी थी। दो।

यादों में खोये हुए मि.राव मूर्तिवत् बैठे हुए थे। महिला के शब्दों से उनकी तंद्रा टूटी, वह कह रही थी–मेरी डायरी आप पढ़ चुके हैं, इसलिए अब जान जायेंगे कि मैं दोहरे व्यक्तित्व का भार ढोते हुए थक चुकी वही लड़की हूँ, जिसे पिता ने अनोखे प्यार भरे वाक्यों ने ही व्यक्तित्व के इस दोराहे पर ला खड़ा किया था।

इसके बाद जब होश आया, तो अपने को अस्पताल में पाया। अस्पताल में होश आते ही पुलिस की कड़ी पूछताछ हो गयी तो मैंने मेमोरी लेप्स होने का नाटक किया और एक दिन मौका पाकर आई.पी.एस. को अपनी कहानी सुना दी। उस भली और सहृदय महिला ने ही मुझे अस्पताल से भागकर वहाँ से कहीं दूर जाकर एक नया, स्वस्थ और साफ–सुथरा प्राकृतिक जीवन जीने की सलाह दी थी।

दादी के मुझे मेरे विवाह के लिए दिये गये बैंक के लॉकर में करीब 30 तोले स्वर्णाभूषणों और पिता के द्वारा मेरे विवाह के लिए जमा कराई गई एक बड़ी रकम के सहारे मैं यहाँ आ गयी। इस आश्रम में आकर काफी दिनों तक योग के अभ्यास से और महिला आई.पी.एस. के शब्दों–मैं तुझे सुधर कर एक नई जिंदगी शुरू करने का अवसर देकर, अपनी नौकरी को दांव पर लगाकर भी एक नया प्रयोग करने की कोशिश कर रही हूँ, अगर तेरे सुधरने का मेरा प्रयोग असफल रहा और मेरी नौकरी पर भी बन आई, तो मुझे अपनी नौकरी जाने का दुख नहीं होगा, जितना यह सोचकर होगा कि मैंने एक अपात्र लड़की को सुधरने का मौका देकर गलती कर दी, के स्मरण से सारे व्यसन छूटते गये।

अब यहाँ एक स्कूल में स्पोर्ट्स इन्स्ट्रक्टर के रूप में काम करती हूँ। सामान्य आदमी की तरह जाने के लिए स्कूल में मिला वेतन काफी रहता है। यह साधारण सा मोबाईल सिर्फ आई.पी.एस. मेडम से कभी कभी बात करने के लिए ले लिया है।

आपको कहानी का शेष भाग सुनाकर कहानी आपके इस आश्वासन पर पूरी कर दी है कि आपने कहा था–मैं आपकी बेटी जैसी हूँ। अब आपसे इस मुँहबोले रिश्ते का इतना मान अवश्य रखूँगी कि मैं उस विजय सिंह को कहीं गहरे दफन कर अब 'जया दी' बन गयी हूँ। आप कभी भी मेरी पुरानी पहचान को जिंदा नहीं करेंगे–कहकर उसने मि.राव की ओर हाथ जोड़कर याचनापूर्ण आँखों से देखा तो राव विचलित हो गये और बोले–मैं तुम्हें वादा देता हूँ बेटी! मगर तुमने अपने माता–पिता से संबंध क्यों तोड़ लिया, उन्हें अपने बारे में क्यों नहीं बताया।

राव का प्रश्न सुनकर विजय उर्फ जया थोड़ी देर चुप रही, फिर नीची नजर करके बोली–''मैं अपने पिता पर आरोप नहीं लगा रही, मगर उन्होंने बार–बार मेरी विजय मेरी लड़की नहीं लड़का है, कहकर मेरे बाल मन में मुझे खुद को लड़की की जगह लड़का समझने की भावन को अंकुरित किया, पल्लवित किया और कई बार मेरे निर्णय प्रकृति और उनकी इच्छा के विपरीत होते हुए भी अपनी कथनी और करनी में अंतर नहीं होने का दिखावा करने के लिए ही मेरी इच्छा पूरी की। वह मेरे प्रति उनके प्यार के साथ ही पारिवारिक और सामाजिक तथा प्राकृतिक अनुशासन के अनुसार तो गलत ही था। गलती मेरी भी थी, मगर उनकी गलती का भाग शायद कुछ ज्यादा ही था, जिसकी सजा मैंने भोगी है और अनंतकाल तक भोगकर उसका प्रायश्चित पूरा करूँगी। आप मुझे आशीर्वाद दे और प्रार्थना करें कि मैं अपना प्रायश्चित पूरा कर सकूँ।'' कहकर विजया ने फिर मि.राव के आगे हाथ जोड़े तो तूने तो अपने पिता के अनोखे प्यार की बहुत बड़ी सजा पाई है मेरी बच्ची, कहकर उन्होंने उसे अपने हृदय से लगा लिया। विजया के गरम–गरम आँसू उनकी छाती को भिंगों रहे थे, जिनमें उनके मन में विजय सिंह के प्रति जमा आक्रोश पिघलकर बहता जा रहा था।

बाल कहानी :

# पिकनिक का मजा

–श्रीअभय कुमार भारती
भागलपुर
मो. 9155459278

दिसम्बर का आखिरी सप्ताह था। बच्चों की वार्षिक परीक्षा खत्म हो चुकी थी। परीक्षाफल आ चुका था। जो बच्चे पास कर चुके थे, उसकी खुशी का ठिकाना नहीं था। सब उछलने–कूदने में मगन थे।

इसी उमंग खुशी और उछाह के तरंग में झूमते हुए कल्लू, धन्नू और फुलटून ने प्लान बनाया कि कहीं पिकनिक मनाने जाया जाए। शुभ काम में देरी कैसी! पिकनिक का नाम सुनते ही उन सबकी खुशी दुगुनी हो गयी और वे सब झटपट तैयार हो गये। विचार हुआ कि इस बार पिकनिक मनाने के लिए मंदार हिल जाया जाए। वहीं प्रकृति की खुली वादियों में पिकनिक का मजा लेंगे। भोजन–भात तो होगा ही, साथ ही बौंसी पहाड़ का सैर भी जमकर करेंगे।

कभी हमलोग बौंसी पहाड़ घूमने गये भी नहीं हैं। मन तो बहुत दिनों से था, मगर मौका ही नहीं मिल रहा था। आज अच्छा मौका मिला है। जरूर हम सबको जाना चाहिए। फुलटून के इतना कहते ही कल्लू और धन्नू का मन भी सुगबुगाने लगा था। फिर क्या था! सबने अपने–अपने हिस्से के पैसे जमा किये। माँ–बाबूजी से सलाह–मशविरा किया और उनकी इजाजत लेकर कुछ आवश्यक तैयारी की और बोरिया बिस्तर समेटने लग गये।

दूसरी सुबह होते ही तीनों बच्चे अपनी यात्रा पर निकल पड़े। सूर्य की सुनहली किरण छिटकने के पहले ही तीनों स्टेशन पहुँच गये। गाड़ी खुलने ही वाली थी। इसलिए जो डब्बा सामने नजर आया, उसी में सब धड़फड़ाकर घुस गये और जिसको जहाँ जगह मिली, वहाँ जाकर बैठ गये। मगर टिकट किसी बच्चे ने नहीं लिया। वैसे भी मंदार हिल जैसे पैसेंजर ट्रेन में उस समय शायद ही कोई टिकट कटाता होगा। गाड़ी में इतनी भीड़ होती थी कि टी.टी.ई. के लिए टिकट चेक करना मुश्किल हो जाता था। इसलिए उस समय टिकट चेकिंग नहीं के बराबर ही होती थी। फिर लोगों को इतनी गरज कहाँ कि लोग टिकट लेकर ही ट्रेन पर चढ़े।

उस समय उन तीनों के दिमाग में यही बात काई की तरह जम गयी थी। उन तीनों ने सोचा कि जब मंदार हिल ट्रेन में टी.टी.ई. चढ़ते ही नहीं हैं, तो टिकट कटाकर क्या करेंगे?

कल्लू ठहरा थोड़ा चालाक। दिमाग दौड़ाया और सरकते सरकते खिड़की के पास पहुँच गया। खिड़की के पास बैठना उसे अच्छा बुझाया। यह सोचकर कि खिड़की से नजर दौड़ाकर बाहर का नजारा बढ़िया से देख सकता है। वैसे भी उसकी आदत थी कि जब कभी भी वह ट्रेन में बैठता, तो उसकी यह कोशिश रहती कि वह खिड़की के पास ही बैठे। उसे पीछे भागते खेत–पथार, गाछ–पात, बागान, खलिहान बहुत अच्छे लगते। उसके मन को बहुत ही भाते थे।

आज भी वह उसी मनोरम नजारे को देखने के लिए इस ठंढ के मौसम में भी ठमककर खिड़की के पास बैठ गया। ट्रेन के खुलते ही फुर्र–फुर्र कर ठंढी हवा बहने लगी थी। भोर की शीतलहरी थी। कनपट्टी पर सट–सटकर ऐसे बज रही थी, मानो जोर–जोर से थप्पड़ मार रही हो। शीतलहरी के थप्पड़ लगते ही कल्लू का कनसाट झनझनाने लगा था।

कुछ देर तक तो उसे बाहर का दृश्य देखने में मजा आया। आँखें फाड़–फाड़कर उसे एकटक देखता रहा। मगर कुछ देर के बाद ही उसका सब मजा किरकिरा हो गया। बाहर की ठंढी हवा के झोंके ने उसके पूरे वजूद ही हिलाकर रख दिया। नाक–आँख के पनियाने के साथ उसकी कनपट्टी टीसने लगी थी। लगता था कि उसकी कनपट्टी पर कोई पत्थर बरसा रहा हो। इसके साथ ही उसका अंग–अंग पत्तों के मानिंद थरथराने लगा था। उसे इतनी ठंढ लगने लगी थी मानो किसी ने उसकी देह पर पत्थर की सिल्ली रख दी हो।

अब तो वह पूरा परेशान हो गया। दिकास छूटने लगा था। नजर के सामने पूरी पृथ्वी घूमने लगी थी। उसे दिन में तारे नजर आने लगे थे। गलती का अहसास होने के साथ उसे नानी याद आने लगी थी। उसने चारो तरफ नजर दौड़ायी, मगर कहीं जरा सी भी जगह खाली नहीं थी, जहाँ खिसककर आराम से बैठा जा सके, ठंढ से बचा जा सके। सभी जगह यात्री बोरिया की तरह एक दूसरे पर लदे हुए थे।

धन्नू और फुलटून भी किसी तरह गुड़मुड़ाकर कोने में दुबके हुए थे। कल्लू की हालत पतली होती जा रही थी। एकबारगी उसका मन हुआ कि वह बुक्का फाड़कर रोये। बेचारा यह पछता रहा था कि काहे के लिए खिड़की के पास बैठ गया। मगर अब पछताने से फायदा क्या! उसे इतना भी दिमाग नहीं कि वह कह– सुनकर या फिर ठेल–ठालकर बीच में चला जाए। गुमान भी उसे कम नहीं। जो है, सो हमीं है। काहे के लिए किसी को कुछ कहेगा। काहे के लिए अपना दुखड़ा सुनाएगा धन्नू और फुलटून को। डर था कि दोनों उसका मजाक नहीं उड़ाये। बुद्धू बोलकर यह नहीं कह बैठे–'और बैठो न खिड़की के पास। खूब मजा आ रहा है न!'

यही सोचकर वह कल्लू ने उन दोनों से कुछ नहीं कह और दम साधकर खिड़की के पास ही बैठा रहा। गाड़ी अपनी रफ्तार से बढ़ी जा रही थी। वह पुरैनी स्टेशन पार कर चुकी थी। सूरज बाहर निकल आया था। उसकी लाल–लाल सुनहरी किरणें निकलने से मौसम की रंगत बदल गयी थी। ठंढ का असर भी कम हाने लगा था। सूरज की लाली फैलने और धूप निकलने से कल्लू को कुछ राहत मिली गयी थी। देह में कुछ गर्मी भी लगने लगी थी। मगर हाड़ कँपानेवाली बर्फीली ठंढ के आगे नन्हीं सी किरणों और रत्तीभर धूप की औकात ही क्या! कितना आराम दे पाएगी वह। आखिर ठंढ लगती ही रही।

जब खिड़की के रास्ते बर्फीली हवा अंदर घुसती तो उसकी जान निकल जाती। वहीं जब सूरज आसमान में बादल की ओट में छिप जाता, तब वह मन ही मन सुमरता–'हे सूरज भगवान! इस तरह मुझे मत सताइए। जल्दी से बाहर निकल आइए। देह हाथ तो बर्फ होते जा रहे थे। गर्मी देकर मेरी जान बचाइए।' बेचार मन ही मन ईश्वर से विनती कर रहा था। चेहरा बिल्कुल उदास और गुमसुम, वहीं आँखें भींगी–सी। मानो अभी रो पड़ेगा। मगर इतनों पर भी उसने किसी से कुछ नहीं कहा। सब कुछ अंदर ही अंदर सह लिया।

आखिरकार आठ बजे के गरीब गाड़ी बौंसी स्टेशन पहुँची। बौंसी पहुँचते ही कल्लू लार–पुआर हो गया। पूरी देह बर्फ सी ठंढी। बेचारा ठंढ से बुरी तरह छटपटाने लगा था–'हाय रे बाप! हाय गे माय! लगता है दरद से माथा फट जाएगा। दम टूट जाएगा। अब नहीं बचेंगे बाबू।' वह ट्रेन पर ही हाथ–पैर पटकने लगा था।

फुलटून और धन्नू ने कल्लू की ऐसी हालत देखी तो वे सन्न रह गये। भय के मारे उनके हाथ–पाँव फूल गये। दिमाग सुन्न पड़ गया। समझ में नहीं आया कि वे क्या करें। बड़ी मुश्किल से उसे दोनों ने मिलकर ट्रेन से उतारा और साथ लाये गर्म कपड़े ओढ़ाकर प्लेटफार्म पर ही लिटा दिया और फिर दोनों उसके देह–हाथ सहलाने लगे। वह अब भी काँप रहा था। रह–रहकर

कुहर रहा था।

अब वे लोग पिकनिक क्या मनाएँगे?पिकनिक का मजा तो एकबारगी काफूर हो गया।पिकनिक से बढ़कर कल्लू की जान बचाना जरूरी हो गया।दोनों भिड़ गये कल्लू की देखभाल में।दोनों को डर था कि अगर कल्लू को कुछ हो गया तो बदनामी दोनों की ही होगी।सब यही सोचेंगे कि कुछ अकच्च–बगच्च खिला दिया होगा।ऐसा ख्याल आते ही उनकी कँपकँपी छूट गयी।पत्तों की तरह पूरा वजूद झनझना उठा।सब जोश ठंढा पड़ गया।उत्साह–उमंग रफूचक्कर हो गया।उस समय दोनों को पिकनिक मनाये जाने की सुधि नहीं रही, बल्कि यह सोचने के लिए मजबूर हो गया कि कल्लू कैसे ठीक होगा, कहाँ पर इसका इलाज कराया जाएगा?न जान न पहचान, किसे अपना दुखड़ा सुनायें।देर करने पर बात बिगड़ भी सकती है।

एकाएक धन्नू को ख्याल आया कि उसके मामा यहीं पुनसिया बाजार में रहते हैं।क्यों न उन्हीं के पास चला जाए।कुछ तो उपाय हो ही जाएगा।धन्नू की सलाह फुलटून को ठीक लगी, मगर समस्या यह थी कि वहाँ तक कल्लू को ले जाएँ कैसे?

संयोग से तभी वहाँ एक ट्रेकर आकर रुका।ट्रेकर के रुकते ही दोनों दौड़ पड़े ट्रेकर के पास।एक ही साँस में सब दुखड़ा बता दिया ट्रेकरवाले को। जहाँ दो पैसे मिले, तो जाने में क्या दिक्कत।बौंसी स्टेशन से पुनसिया बाजार कम दूर नहीं था।सो पिकनिक का प्लान कैंसिल और उसके पैसे बँट गये भाड़े में।ट्रेकरवाले ने तीन जनों का भाड़ा तीस टका लिया।तब बाजिव भाड़ा था या नाजायज।इतना ध्यान उस समय किसी को नहीं था।उस समय बस एक ही फिक्र थी कि जितनी जल्दी हो सके, पुनसिया बाजार पहुँच जाय।यही सोचकर ट्रेकरवाले ने जो माँगा, चुपचाप निकालकर दे दिया।

ट्रेकर आधे घंटे में ही पुनसिया बाजार पहुँच गया।भाग्य अच्छा था कि धन्नू को उसके मामा के डरे का पता बढ़िया से याद था।मामा घर पर ही मिल गये।तीनों को अचानक अपने द्वार पर आते देखकर उन्हें थोड़ा अचरज हुआ। उन्हें शंका हुई कि किसी के साथ अनहोनी तो नहीं हो गयी।फिर कल्लू की हालत देखकर उन्हें समझते देर नहीं लगी कि जरूर कुछ गड़बड़ है।तत्पश्चात् धन्नू ने उन्हें पूरा किस्सा कह सुनाया।सुनते ही मामा का चेहरा एकबारगी तमतमा गया। उन्होंने उन सबको डपटते हुए कहा–तुमलोग अकेले इतनी दूर चले आए।अगर तुमलोगों को कुछ हो जाता तो पता है तुमलोगों के माता–पिता पर क्या गुजरता! कहना तो वे बहुत कुछ चाहते थे, मगर कल्लू की हालत देखकर ज्यादा कुछ कहना उचित नहीं समझा।फिर बिना कोई देर किये डॉक्टर के पास पहुँच गये। पीछे से फुलटून ओर धन्नू भी सहमे–सहमे पहुँचे।ध्यान हमेशा कल्लू पर लगा था।कब बेचारा ठीक होगा।जितनी जल्दी ठीक हो जाए, अच्छा है।

डॉक्टर ने झटपट कल्लू के शरीर की जाँच की और बिना समय गँवाये तड़ातड़ तीन सूई चुभो दी कल्लू की चूतड़ और बाँह पर।साथ ही उनलोगों को दवाई का पुर्जा लिखकर थमा दिया।'जाइये बगल की दुकान से दवा ले आइए।'

धन्नू के मामा कोई धन्नासेठ नहीं थे।दूसरे की दुकान में काम करके किसी तरह से अपने और अपने परिवार का गुजारा कर रहे थे।बच्चे–बुतरू का पेट पाल रहे थे।वे सोच में पड़ गये।कैसे दवाई लायी जाएगी?बच्चे लोगों के पास इतने पैसे कहाँ से होंगे?सो इन बच्चों से कहने से क्या फायदा!

सोचते ही उनकी परेशानी पर बल पड़ गये।धन्नू को समझते देर नहीं लगी कि मामा के पास लाचारी है।इससे पहले मामा कुछ बोलते, झट धन्नू बोल उठा–'चिंता न करे मामाजी!हमलोगों के पास कुछ पैसे हैं।चलिए, दवा ले आते हैं।'फिर दोनों तीनों ने मिलकर मामा के हाथ में करीब डेढ़ सौ रुपये रखे। झट दवाइयाँ मँगायी गयी।दवाई खरीदने में मामाजी के भी पैसे लगे।दवाई खाने से कल्लू की हालत में सुधार होने लगा था।मगर अभी उसे आराम की जरूरत थी।

रात के आठ बज रहे थे।अब इस रात में ये सब कहाँ जायेंगे?रास्ते में कुछ हो जाए तो...।सो कल्लू की खातिर तीनों रातभर पुनसिया में ही ठहर गये। दवाई ने कुछ असर दिखाया और फिर रातभर आराम मिलने से कल्लू की हालत में काफी सुधर हो गया था।वह चलने फिरने लगा था।

भोर होते ही उन्हें ख्याल आया कि घरवाले चिंता करते होंगे।कल भोरे ही घर से निकले हैं।फिक्र तो होगी ही।अब हम सबको घर चलना चाहिए। यही सोचकर सूरज के निकलते ही सबने मामाजी से इजाजत ली और घर के लिए निकल पड़े।नौ बजते–बजते वे तीनों भागलपुर पहुँच गये और दस बजते–बजते घर।घर पर सभी उन सबका बेसब्री से इंतजार कर रहे थे।उन तीनों को सही सलामत पाकर घरवाले को राहत मिली।उन्हें कल्लू के साथ हुए हादसे का पता चल चुका था।

कल्लू को तो नई जिंदगी ही मिल चुकी थी।उसकी समझ में आ गया था कि अगर उसके साथ आज धन्नू और फुलटून नहीं होते तो पता नहीं उसका क्या होता!कल्लू पूरी तरह चंगा हो गया था।यह जानकर उन दोनों को भी बड़ी खुशी हुई।मन आत्मसंतोष और सुकून से भर उठा।आज इन दोनों को महसूस हुआ कि उसने पिकनिक का सच्चा आनंद पाया है।सच में दूसरे के सुख में ही अपना सुख समृद्धि और सच्चा आनंद छुपा है।

## दूर बहुत आ गये हम

सोनी कुमारी
भागलपुर
मो.–7004732069

है सफर जिंदगी यह
चल रहे हैं हम
कहीं मिली खिली धूप
कहीं ज़मीं नम
क़ारवाँ तो साथ थे
अब बस बचे हैं हम
क्या कहें?किससे कहें?
दूर बहुत आ गये हम
सोच के समंदर में

डूबते उपलाते रहे
होंठ तो मुस्काते रहे
पर आँखें बहुत है नम
कभी धीमी कभी तेज
आँखें बरसती बूँदों में
भींगते रहे हम
क्या कहें?किससे कहें?
दूर बहुत आ गये हम
पुष्प गिर पड़े टूटकर

टहनियाँ निहारती रही
जमीं बर्फ के अंदर अंदर
पुष्प पुकारते रहे
खेल निराले माया के
ग़म और खुशी के चक्कर में
फँसते रहे हम
क्या कहें?किससे कहें?
दूर बहुत आ गये हम
जीवन के हर चौराहे पर

राह ख़ोज न पाये हम
जो पास बहुत वो दूर हुए
दूर रहे फिर पास नहीं
तन्हाई के घेरे में आकर
अपना जीवन भी पास नहीं
अब दौड़ रहे बिरान सड़क पे
किसी से कुछ कह न सके हम
क्या कहें?किससे कहें?
दूर बहुत आ गये हम

कहानी :

# टप्परवाली बैलगाड़ी

अशोक वर्मा,
भीखनपुर, भागलपुर
8538933749

गाड़ी जरा धीरे–धीरे चलाइए ड्राइवर साहब! मैडमजी ने ड्राइवर से कहा तो मैं चौंक गया। मुझे लगा इनकी तबीयत तो खराब नहीं हो गई या कोई चक्कर–वक्कर तो नहीं आ रहा।

पूछने में 'न' में सिर हिलायी और मुस्कुरा दी। स्कार्पियो गाँव से लगभग दो किलोमीटर अभी दूर थी। रेंगती हुई गाड़ी चल रही थी। गाड़ी की धीमी गति से बच्चे भी उकताने लगे थे। मुझे भी गुस्सा आ रहा था। मैडमजी थी कि बहार चारो तरफ उचक–उचक कर देखने में मशगूल थीं। दिमाग पर जोर डाला, बेरंग लौटा तो पूछ डाला–'क्या खोज रही हैं मैडमजी!'

ठहाका लगा दिया उन्होंने। कहा–टप्परवाली बैलगाड़ी, मैं हैरान हो गया उनकी बात सुनकर। टप्परवाली बैलगाड़ी। क्या रिश्ता है टप्परवाली बैलगाड़ी से इनका। बच्चे भी अचंभित थे हमारी बातों से। वैसे मैं तो अपने गाँव और अपनी ग्रामीण जिंदगी के बारे में अक्सर बच्चों को सुनाया करता था।

तालाब किनारे बंशी लगाकर मछली का पकड़ना, भरी दोपहरी में बरगद की छाँव तले मेरा खेलना, माँ का डाँटना, आँधी आने पर बगीचे में आम चुनने के लिए दौड़ पड़ना...ये सब तो बच्चे जानते ही थे। शाम ढलते ही मेरी दादी माँ आँगन में बड़ी–सी खाट निकालकर उसपर बिछावन डालती और सभी बच्चों को अपने चारों ओर लेकर बैठ जाती। फिर शुरू होता अंताक्षरी और पौराणिक कहानियों का दौर। चटपटी प्रेरणास्पद कहानियाँ भी। कैसे एक चना का सात भाइयों ने बड़े प्रेम से आपस में बाँटकर खाया?कैसे छोटी–सी गौरैया जाँता से फँसी दाल को निकाल देन के लिए चिरौरी करती। हमलोग भी और–और की रट लगाते रहते, जब तक कि हमें नींद नहीं आ जाती।

तब और अब में बहुत फर्क आ गया है। गाँव में जमीन का टुकड़ें–टुकड़ों में बँटना, संयुक्त परिवार का बिखरना। दूर प्रदेश में नौकरी व्यवसाय के लिए जाना। छोटा–सा दो कमरों का फ्लैट। दानी नानी का साथ छूटा। प्यार भी टूटा। बच्चे भी इस रिश्ते को भूलते चले गये।

इस बार गर्मी की छुट्टी में बच्चे गाँव जाने के लिए जिद लगा बैठे। मेरे मम्मी पाप तो अब नहीं रहे। गाँव में मिट्टी खपरैल का मेरा घर था। अनुपयोगी समझकर उसे छोड़ दिया था। खंडहर में तब्दील हो चुका था मेरा घर। हमारा भी गाँव से संपर्क खत्म सा हो गया था।

बच्चों को बहुत समझाया। मना किया। बच्चे माने ही नहीं, तो मन मारकर हमलोग सुबह टिफिन लेकर अपने गाँव की तरफ निकल पड़े।

'मम्मी टप्परवाली बैलगाड़ी मिली?'–बच्चों ने गाँव में गाड़ी से उतरते ही पूछा।

'नहीं बेटा!नहीं मिली।'–मायूसी से मैडमजी ने जवाब दिया।

क्या बात है मम्मीजी! आप बहुत उदास हो गयी हैं?टप्परवाली बैलगाड़ी के न मिलने से।

'तुमलोग नहीं समझोगे। यह एक लंबी कहानी है मेरी जिंदगी की। हमारी जिंदगी शुरू हुई थी इसी टप्परवाली बैलगाड़ी से।'

अब मेरी समझ में आ गई थी टप्परवाली बैलगाड़ी की राज। तीस साल पहले शहर से ब्याही एक लड़की अपने ससुराल जा रही थी। उसके ससुराल मैके से पैतालीस किलोमीटर दूर एक छोटे से ठेठ गाँव में था। गाँव से चार किलोमीटर पहले ही पक्की सड़क समाप्त हो जाती थी। वहाँ से गाँव तक कच्ची सड़क उबड़–खाबड़। यातायात के लिए बैलगाड़ी के अलावा अन्य कोई साधन नहीं था। उसके लिए भी धर्मशाला में बैठकर घंटों इंतजार करना होता। नई दुल्हन बिना टप्परवाली बैलगाड़ी से जा भी नहीं सकती थी। टप्परवाली बैलगाड़ी के लिए इंतजार और भी दु:खदायी हो गयी थी।

नई दुल्हन सुबह–सुबह मायका से निकली हुई भूखी प्यासी। पहले स्टेशन पर ट्रेन का इतजार, फिर बस और अब टप्परवाली बैलगाड़ी। भूख–प्यास से उसका मुख मलिन हो गया था। पूछने पर 'न' में सिर्फ सिर हिलाती। कुछ बोलती नहीं थी। रोती हुई आँसू पोंछ लेती। कोई उसका मुँह देख न ले। इसलिए घूँघट से चेहरे को ढक लेती। उस दिन एहसास हुआ औरत की विवशता का। शहर की स्वच्छंद लड़की, जिसने ग्रामीण परिवेश को जाना तक नहीं। न जाने उस लड़की ने क्या–क्या सपने संजोये होंगे। परियों के देश का राजकुमार उसे ब्याह कर परिलोक ले जाएगा। महारानी बनेगी परिलोक की। जब एक लड़की घरौंदा बनाती है, कुढ़िया–फुचिया भरती, सजाती है, खेलती है और गुड्डा–गुड़िया में अपने भविष्य का अक्श देखने लगती है।

मेरे कुछ खाने का आग्रह पर वह हाथ पकड़कर फफक कर रो पड़ी। मैं उसके दर्द को समझ रहा था। बहुत समझाने पर मिठाई का एक टुकड़ा मुँह में डाला। एक घूँट पानी पी लिया। बस। दो घंटे बाद टप्पवाली बैलगाड़ी मिली। पर्दा लगा कर उस गाड़ी में हम दोनों बैठे। बाराती पैदल ही निकल गये थे। कुछ बचे लोग बिना टप्परवाली गाड़ी में बैठे। गाड़ी में उसे कुछ सुकुन सा महसूस हुआ। मेरी गोद में सिर रखकर सो गई। मेरी नजरें जो उसके चेहरे पर जा टिकी। उस अवस्था में भी उसकी मासूमियत गजब ढाह रही थी।

घर के आगे बैलगाड़ी के लगते ही मैंने उसे जगाया। हड़बड़ाकर कपड़े ठीक करते हुए उठ बैठी थी वह। काफी महिलाएँ जमा हो गयी थीं। फिर रस्में शुरू हुई। एक घंटे में फुर्सत पाकर कमरे में आई तो पहला प्रश्न बाथरूम के लिए ही था। मैंने अपनी बहन से मिलवाया। आंगन के एक कोने में शौचालय जैसा बनाया गया था। बड़ी परेशान हो गई थी वह।

आओ दुल्हन, आओ बेटा, हम तुम्हारी दादी लगती हैं। हमारी चाची माँ गाड़ी के पास आ चुकी थी।

मैडमजी ने उनके चरण छुए तो बच्चों ने भी अनुसरण किया। शिकायती लहजे में चाची माँ ने कहा–'तुम्हारे पापा तो गाँव का रास्ता ही भूल गए हैं। बिल्कुल नाता ही तोड़ लिया है हमलोगों से। धर आँधी पानी में गिर गया तो क्या हुआ, हमलोग तो हैं न! सभी के आने से गाँव में कितनी रौनक आ जाती है। लगता है कि गाँव में जान आ गई। अब तो लगता है,जैसे गाँव उजाड़ हो गया।

क्या करें गाँव के लोग चाची माँ, रोजगार व्यवसाय का कोई साधन नहीं?आमदनी का कोई स्रोत नहीं। जवानी यूँ ही बुढ़ापे में तब्दील हो जाती है। गाँव में भूखे पेट कबतक सहन करते लोग। इसीलिए गाँव से नवयुवकों का पलायन शुरू हो गया। आपके बच्चे भी तो सभी दिल्ली–पंजाब में हैं।

हाँ बेटा! अब तो वे लोग भी शादी–ब्याह कर वहीं बस गये हैं। कभी–कभी दस बीस हजार रुपये मेरे खाते में डाल देते हैं या फिर चार–पाँच साल में एक–आध बार गाँव आते हैं। चाची माँ ने गहरी निश्वास लेकर कहा।

चाची माँ ने हमें अपना टिफिन खोलने नहीं दिया। आधे घंटे में गैस चूल्हा जलाकर उन्होंने हमलोगों के लिए ताजा खाना तैयार कर दिया। फिर खाना खाकर मैडमजी और बच्चों को गाँव घूमाने ले गयी। मुझे तो खाली समय सोने में बड़ा मजा आता है। पंखा चलाकर मैं लेट गया। तीन घंटे के बाद मैडमजी ने मुझे जगाया। सभी लोग गाँव के लोगों से मिलकर बहुत खुश थे। आज भी गाँव में अपनापन दिखता है। क्या छोटे, क्या बड़े, क्या जात, क्या परजात सभी लोगों में अपनापन दिखा। बच्चों ने सभी जगह थोड़ा–थोड़ा ही सही कुछ न कुछ खाया। मैडमजी ने शहर आने का निमंत्रण भी लोगों को दिया।

मैडम जी बाथरूम से लौटकर बहुत खुश थी। उन्हें रहा नहीं गया, बोल पड़ी–चाची माँ! मैंने तीन दिन, तीन रात इस गाँव में भूखे–प्यासे बितायी थी। अब किसी नई दुल्हन को भूखे–प्यासे नहीं रहना होगा और न ही टप्परवाली बैलगाड़ी की यात्रा करनी होगी।

पक्की सड़क और घर–घर शौचालय के साथ–साथ गाँव में भी हर तरह की सुविधाएँ पहुँच गयी हैं। हमलोगों के लौटने की आतुरता ने चाची माँ को भाव विह्वल कर दिया। हाथ पकड़कर रोने लगी। बहते आँसू दो चार दिन रुकने के आग्रह के साथ–साथ शायद यह पूछ रहे थे–'अतिथि अब कब आओगे।'

लघुकथा

# नामर्द

अब्दुल बारी साकी
गयारी, अररिया
मो. 8603903150

आपसी गलतफहमी और उसके बाद फैले छिटपुट हिंसा से आम अवाम त्रस्त थे। पर धीरे–धीरे हालात सामान्य होने लगी थी। लोगों में भी तेजी से विश्वास बहाल हो रहा था। एक भाई दूसरे भाई से शर्मिन्दा निगाहों से मिल रहे थे। लोग निर्भीक होकर एक–दूसरे के घर आ–जा रहे थे। इसी बीच एक दिन अखबार पढ़ते हुए तुरंत उसे समेटकर वह गंभीर मुद्रा में सोचने लगे। चंद मिनट के बाद उनके दिल में एक विचार आया। फौरन उससे बीवी को आवाज दी–मैडम, मैडम! नीलो मैडम, जरा मेरे पास आइए। अंदर से आवाज आई–जी, मैं अभी आई। चंद मिनटों में ही निलोफर उनके सामने आ खड़ी हुई। फैसल ने बड़े ही प्यार से उनकी ओर देखते हुए पूछा–आपके पास चूड़ियाँ तो होंगी?मुझे फिलहाल एक सेट दे दीजिए। चौंककर उसने खाविन्द की तरफ देख नजाकत भरे स्वर में पूछा–मर्दों को भी चूड़ी की जरूरत?पुनः फैसल ने कहा–हाँ, हाँ, जरूरत है। मर्द की मर्दांगी खत्म हो जाए तो उसे चूड़ी पहन लेनी चाहिए। मुस्कुराते हुए निलोफर ने कहा–मेरे सरताज! मैं समझ नहीं सकी। पुनः फैसल ने कहा–आपको बाद में समझा देंगे। फिलहाल आप मुझे चूड़ियाँ तो दीजिए। थोड़ी देर बाद निलोफर ने एक सेट खूबसूरत चूड़ियाँ उसे पेश की। फैसल ने चूड़ियों को अपने बैग में रखा और झटपट कपड़े बदलकर घर से निकले। आधा घंटा के बीच वे नेताजी के कार्यालय पहुँच गये। इससे पहले भी वे कई दफा नेताजी द्वारा आयोजित प्रेस कांफ्रेंस में शामिल हुए थे, इस वजह से भी नेताजी के निजी सचिव एवं सुरक्षागार्ड उन्हें विशेष रूप से पहचानते थे। उनके पहुँचने पर एक सुरक्षाकर्मी ने नेताजी से कहा–सर! एक उर्दू अखबार के संपादक जी आपसे मिलना चाहते हैं। तपाक उसने आदेश दिया–ठीक है, आने दो उसे। गार्ड ने जैसे ही ग्रीन सिंगनल दी, फैसल अपने हाथों में बैग थामे नेताजी के चेम्बर पहुँच गए। दोनों ओर से अभिवादन के बाद नेताजी ने फैसल को बैठने कहा। शुक्रिया अदा करते हुए फैसल ने नेताजी के स्वस्थ रहने एवं उनके दीर्घायु होने की कामना की। इसके उपरांत नेताजी ने बातचीत शुरू की। मौजूदा हालात पर बोलते हुए वे अचानक भावुक हो गये। तपाक फैसल ने बैग से चूड़ियों का सेट निकलकर उसे पेश करते हुए अपने चिरपरिचित अंदाज में कहा–आप सदियों पुरानी एतिहासिक धरोहर की हिफाजत नहीं कर सके। इसलिए आप यह चूड़ियाँ पहन लीजिए और अपने पैतृक गाँव चले जाइए।

## नासमझ

यूँ तो मोबाईल से बातचीत होती रहती थी। जबकि एक दूसरे के दर्शन हुए महीने बीत गये। आखिकार समीर ने ही श्याम के घर जाने का इरादा किया। चार बजे के करीब वह उनके घर पहुँचे। उस वक्त श्याम हाथ धोकर रूमाल से पोंछ रहा था। जैसे ही उनकी नजर समीर पर पड़ी, हड़बड़ाकर उसने कहा–आदाब! पुनः उसने आवाज लगाई–शोभा बेटा! अंदर से कुर्सी लेते आओ। शोभा कुर्सी लेकर आयी और फिर उसने पैर छूकर समीर को प्रणाम किया। तुरंत श्याम ने शोभा से कहा–जग में पानी और गिलास के साथ चाचा के लिए खाना लगा दो। यह सुनते ही शोभा आगे बढ़ी, तत्क्षण समीर ने उसे रोका और मुस्कुराते हुए कहा–नहीं–नहीं, मैं तो खाना खाकर सीधे नहीं आया हूँ। पुनः श्याम ने शोभा से कहा–ठीक है फटाफट चाय लेकर आओ। इसके बाद श्याम ने समीर से बगल में बैठते हुए पूछा–और सुनाइए, मित्र! अपने और परिवार–बच्चों के बारे में। मुस्कुराकर समीर ने कहा–हाँ, सब ठीक है। लेकिन आप यह बताइए, आपको इतना विलंब कैसे हुआ?बात दरअसल यह हुई, पहले शोभा बेटी की छात्रवृत्ति के लिए कॉलेज गया, जहाँ प्रधानाचार्य विलंब से कॉलेज पहुँचे। इसके बाद बैंक में भी लंबी कतार। काफी समय बर्बाद हुआ। बहरहाल, काम हो गया। श्याम ने गहरी साँस लेकर बोला। समीर ने मुस्कुराते हुए पूछा–आज खाने में क्या खाया गया?बस वही परंपरागत, जो हमलोग प्रायः खाते हैं। श्याम ने कहा–भात, दाल, आलू का चोखा। यह सुनते ही समीर चौंक पड़ा–अरे वाह! हम दोनों मित्रों के बीच काफी समानता है। क्योंकि मैं भी यही खाना खाकर आ रहा हूँ घर से। गंभीर होकर श्याम बोला–समानता हो भी क्यों न?हमलोगों के बीच आत्मीय संबंध जो है। लेकिन आपने तो सिर्फ मसूर दाल खाया होगा, जबकि मैं लगभग पंद्रह वर्षों से मसूर, मूँग,चना और राजमा का मिक्स दाल खाता हूँ। यह कितना स्वादिष्ट होता है, इसका अंदाजा शायद आपको नहीं?जिज्ञासु होकर समीर बोला–सच में, बहुत स्वादिष्ट होता है?श्याम ने कहा–यकीन नहीं, तो आजमाकर देख लीजिए। या फिर....। पुनः समीर ने कहा–आजमाने की क्या जरूरत?एक सच्चे मित्र का कहना ही मेरे लिए काफी है। लेकिन ऐसी बात है तो आप इन्हें समझाते क्यों नहीं?जो सस्ती शोहरत के लिए कुछ न कुछ बोलते रहे हैं। इसपर श्याम बोला–मैंने समझा नहीं। पुनः समीर ने कहा–दरअसल कुछ कथित राष्ट्रभक्त किसी न किसी बहाने हरहमेशा हमारे बीच नफरत फैलाने का प्रयास करते रहते हैं। इन्हें कौन समझा पाएगा कि दुनिया में हमारे देश की पहचान अलग–अलग जाति,धर्म, और संस्कृति ही है। यह सुनकर श्याम ने शर्म से निगाहें नीची करते हुए धीरे से बोला–मेरी क्या बिसा

## पकती खिचड़ी

सत्य शुचि, साकेतनगर व्यावर
राजस्थान, 94133685820

उस रोज ड्राइंग रूम में एक व्यक्ति और आ बैठा था और वह तुरंत बोली–भइया कब आए? समय का नजारा भाँपते हुए वह मौन ही था, किन्तु जल्द ही पति अभी किसी प्रयोजनवश ड्राइंग रूप छोड़ चुका था।

इस मर्तबा उसने पुनः दोहराया–अरे, यार! बोलते क्यों नहीं?और वह आश्चर्य–सी उसे पटाती चली गई, फिर भी वह चुप का चुप ही रहा।

और सहसा, मिनटों में ही वह एक दूसरे के समीप खींचते चले गये।

मगर क्षणों में ही चुपके से बाहर खिड़की से कोई झांककर रह गया।

## माँ का सपना

उस रोज माँ बेटी के घर आई हुई थी। फिलवक्त वह एक अनजाने भय से उखड़ी–उखड़ी सी थी। वस्तुतः इधर उधर से सुनी सुनाई संकलित–एकत्रित बातों से वह बेहद खफा हो चली थी।

मगर दिलचस्प बात यह है कि माँ के पास इस कदर उचका कि बेटी के पास आना घरभर को चौंका गया था।

'माँ, कभी आती तो नहीं है।' तुरंत बेटी की सोच लहराई। दन से स्वयं के दुःख–तकलीफों को बेटी ने खारिज की करने की कोशिश की, तत्पश्चात् फट से वह माँ के सामने फूटी।

'ना–ना माँ! नौकरी मैं अपने लिए करती हूँ और मेरा रसोई कार्य घर में अपनों के वास्ते ही है। ये जो आपका कथन सार है, वह सरासर निराधार है, उनमें सच्चाई नहीं है और तो और मैं यहाँ बड़े मजे आराम में हूँ। आइंदा से आप मेरी चिंता करना छोड़े।

उसी निमिष माँ उठी और घर से प्रस्थान करते समय वह बुदबुदाई, उसका नजरिया अभी गलत निकला है।

कुल जमा, शादी के बाद बेटी के सुख–दुख उसके भाग किस्मत से जुड़े–बँधे होते हैं। और अब शनैः शनैः एक भीतरी आशंका से निजात पाते हुए उसके कदम स्वतः ही द्रुतगति से सड़क को पार कर गए।

कविताएँ

–ज्योति सिन्हा
धनबाद (झारखंड)
मो–09931240303

## शहर से उबा हुआ आदमी

शहर से उबा हुआ आदमी
कहता है
लौट जाऊँगा अपने गाँव
जो बरसों पहले छोड़ आया था
शहर की चकाचौंध में
एक कमरे में सिमटा आदमी
याद करता है
अपने गाँव को
अपने घर को
जो तीन कमरोंवाला
मकान है
बड़ा सा आँगन है
आँगन में कुआँ है
धूप के लिए तरसना नहीं पड़ता है
पानी का कर्ज चुकाना नहीं पड़ता है
बिजली की खपत कम होती है
शहर से उबा हुआ आदमी
खोजता है
बाजार हाट में
खेतों की ताजी सब्जी
बिना केमिकल का
देशी गाय शुद्ध दूध
वह तो प्रति दिन
पैकेट वाला दूध
उबालता है और पीता है
सेहत के लिए
अब वह छोड़ देना चाहता है
शहर की कोलाहल को
दिखावे और भाई चारे को
वह अपना गाँव
लौट जाना चाहता है
दोस्तों के बीच
परिवार के बीच
रिश्तों के बीच
वह बतला देना चाहता है
अपने हाथ से उगाए गए
सब्जी का स्वाद
शहर, चमकता है
आम आदमी के लिए
दूर से

## मुझे ईश्वर नहीं, तुम्हारा कंधा चाहिए

पता नहीं ऐसा क्यों होता है अक्सर
ईश्वर से ज्यादा तुम याद आती हो
मैं ईश्वर को मानता तो हूँ
पर उसे जानता नहीं
और न ही चाहता हूँ जानना भी
मुझे सिर झुकाने के लिए
ईश्वर नहीं
सिर टिकाने के लिए
कंधा चाहिए
और वो ईश्वर नहीं
तुम दे सकती हो।

## प्रेम

मैं तुमसे इसलिए प्रेम नहीं करता
मैं तुमसे इसलिए
प्रेम नहीं करता कि
मैं तुम्हारे प्रेम में पड़कर
अंधा हो जाऊँगा
बल्कि इसलिए करता हूँ प्रेम
कि मैं तुम्हारी आँखों से
दुनिया देख सकूँ
मैं तुमसे इसलिए
प्रेम नहीं करता कि
तुम्हारे पीछे दौड़ते–भागते
बेकार निकम्मा अपाहिज हो जाऊँ
बल्कि इसलिए करता हूँ प्रेम
मैं तुम्हारे कदमों से चलकर
अपनी मंजिल तक पहुँच सकूँ
मैं तुमसे इसलिए
नहीं करता प्रेम
कि अपना सब कुछ लुटाकर
तुम्हारा सब कुछ हासिल कर सकूँ
बल्कि इसलिए करता हूँ प्रेम
कि तुमने ही यह कहकर
पढ़ाया प्रेम का सच्चा पाठ
कि प्राप्ति प्रेम की समाप्ति है
और सच कहूँ तो
मैं तुम्हें पाकर
तुम्हें खोना नहीं चाहता।

अशोक सिंह
दुमका
मो. : 9431339804

## जीवन की सूखी रोटी

जीवन की सूखी रोटी
पर चुटकी भर नमक है प्रेम
थककर चूर
शिथिल पड़ी काया के सिरहाने
तकिया बढ़ाते हाथ हैं प्रेम
एक कंधा है
दुख के क्षणों में
लरजते हुए सिर टिकाने को
मेहनत और थकान से
माथे पर उभरी
पसीने को श्वेत बूँदों पर
भीतर अंगुलियों की छुअन है
स्याही सोखता की तरह
पीड़ा और थकान सोखती
आँखें हैं प्रेम
प्रेम
रात के अँधेरे में
सूनसान सड़क पर खड़ा लेम्पपोस्ट है
एक छायादार पेड़ है प्रेम
दोपहर की चिलचिलाती धूप में
जाड़े की सर्द रातों की गर्म लिहाफ
सुबह की गुनगुनी धूप है प्रेम
और तो और जिंदगी की रूखी सूखी रोटी पर
चुटकी भर नमक है प्रेम।

जयप्रकाश मानस
पेंशनवाड़ा,रायपुर
छत्तीसगढ़ 9424182664

## उपस्थिति

व्याकरणाचार्यों से दीक्षा लेकर नहीं
कोशकारों के चेले बनकर भी नहीं
इतिहास से भीख माँगकर तो कतई नहीं
नए शब्दों के लिए
नापनी होंगी दिशाएँ
फाँकने पड़ेंगे धूल
सहने पड़ेंगे शूल
अभी
निहायत अपरिचित, उदास, एकाकी
शब्दों की उपस्थिति
नहीं हुई है कविता में
अभी पराजय की घोषणा न की जाए
मुठभेड़ों की आवाजें आ ही रही हैं छन छनकर
क्या पता किसी के पास बची हो एकाध गोली
क्या पता आखिरी गोली से टूट जाए कारागृह का ताला
और फिर बंदीगण
सूरज नहीं आ सकता
हर किसी के आँगन में सुबह होते ही
किरणें बराबर आती रहें
पूरब की ओर हों आपके घर के दरवाजे
खिड़कियों
माँओं की गोद में आना बाकी है अंतिम बच्चा
चिड़ियों को याद है अभी भी गीत की एक कड़ी
लड़ाकुओं ने चलाया नहीं है अंतिम अस्त्र
कुछ सपने अभी भी कुँआरे हैं
हवाओं में भटके रहे हैं
फिर ऐसे में कैसे हो सकती है
दैत्य की विजय।

–डॉ. अनुज प्रभात,
अररिया
मो.–9470023249

## सावन का आना भी अब

सावन की बारिस में
छप–छपाछप करता बचपन
कागज की नाव से
खेल खेलता बचपन
सभी कुछ जैसे
अरमान हो गया है
सावन का आना भी
अब अंजान–अंजान हो गया है
आसमान में तैरती घटायें
सिरहन सिहरन देती हवायें
भींगे–भींगे बदन पर
चमचमाती, बलखाती
बूँदों की अदायें
सब कुछ जैसे
गुनगान हो गया है
सावन का आना भी
अब पैगाम पैगाम हो गया है
क्यों वक्त बदलता है
क्यों बचपन नहीं ठहरता है
क्यों जवानी चढ़ता उतरता है
क्यों आँचल अब वह नहीं होता
जो भींगना भीगाना
भींग भींग कर आना
अब नहीं आसान हो गया है
लगता है सभी कुछ जैसे
बेईमान हो गया है
सावन का आना भी
अब गुमनाम गुमनाम हो गया है।

डॉ. मंजरी पांडेय,
सारनाथ, वाराणसी
दूरभाष–9307488087

## गीत

सपने भींग जाने दो
नयन को नीर बहाने दो
जमाने के सताये हम
चैन की नींद आने दो

बहुत कुछ सुन चुके हैं अब
देखना रहा नहीं कुछ अब
कुछ भ्रम ही रहे तो सही
मन के दीप जलाने दो

कहाँ से थे चले हम और
कहाँ ये आ गये हैं अब
भूला कुछ भी नहीं अब तक
नयी बस रीत चलाने दो

बहुत कुछ छोड़ आई हूँ
स्नेह का दीप जलाने को
चौबारे के दीये को
एक उम्मीद जलाने दो

घाव लगते हरे अब भी
तुम्हीं ने थे दिये जो कभी
कुरेदो मत इन्हें फिर से
इन्हें मनमीत मिलाने दो

जमाने भर के लेकर गम
उफ् तक नहीं करते हैं हम
अब न रोको हमें कोई
सूरज से आँख मिलाने दो।

## ग़ज़ल

–उर्मिला प्रसाद,
मो. 9933553195

1222 1222 1222
हमारे पास उस प्रीतम की भी कोई निशानी है
कभी वो सामने आये तो उसको ये बतानी है
कभी झाँका नहीं तुमने मुहब्बत से निगाहों में
हक़ीकत है यही उसकी वो तेरी ही दिवानी है
पखेरू हो गया है दिल लगा सपने सजाने ये
नये रंग ख्वाब के मेरे हुआ ये आसमानी है
मुसलसल इम्तहानों से गुज़रते ही रहे हैं हम
नहीं समझा ज़माना तो ये उसकी ही नादानी है
मुफ़्त का वो नहीं खाता कभी कोई निवाला भी
ज़माना जानता है वो बड़ा ही स्वाभिमानी है गिरह
सभी के दिल पे लिखो प्यार की कोई कहानी है
यही तेरी कहानी है यही मेरी कहानी है।

2
2122 1212 22
सीढ़ियाँ छत से जो नहीं पहुँचीं
कैसे वे जाने चाँदनी क्या है
जिसने देखा नहीं कभी सूरज
जाने वो कैसे रौशनी क्या है
देह का रिश्ता ये नहीं होता
हमको मालूम दिल्लगी क्या है
डूब के पाया जो तुम्हें खुद में
तो ये जाना कि बंदगी क्या है
वो बहुत पास से दिखी हमको
हमने देखा कि मुफ़लिसी क्या है
इश्क पत्थर को चूमता न कभी
उससे पूछो कि बेबसी क्या है

## लोकवाणी

आदरणीय संपादक महोदय
श्रीदयानन्द जायसवाल
त्रैमासिक पत्रिका 'सुसंभाव्य'
नमस्कार,

सुसंभाव्य का अक्टूबर 16 अंक प्राप्त हुआ। श्रेष्ठतम रचनाओं को अपने कलेवर में समेटकर यह पत्रिका हर अंक के प्रकाशन के साथ साहित्य के क्षेत्र में उच्च शिखरों को छूने का मानदंड भी उठाती चली आ रही है। विश्वग्राम के सुधी पाठकवृंद एवं परिष्कृत साहित्य के प्रेमीजन मेरी ही भांति इस पत्रिका के हर नवल अंक के लिए उत्सुकता के साथ प्रतीक्षारत रहते होंगे, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध यह पत्रिका निस्संदेह विश्व की स्तरीय हिन्दी त्रैमासिक तो है ही, साथ ही साहित्य के प्रचार–प्रसार हेतु अनथक प्रयासरत रहने के अलावा पत्रिका को आज के इस भौतिकवादी युग में भी पूर्णतः निशुल्क रखकर निरंतर प्रगति सोपानों की ओर अग्रसर करने प्रधान संपादक एवं संपादक द्वय के प्रयासों की जितनी भी प्रशंसा की जाए, कम होगी। साहित्य की सम्यक् विवेचना हेतु यह पत्रिका आलोचना एवं रचनाधर्म से जुड़े सभी साहित्यप्रेमियों के लिए सतत मार्गदर्शक बनी रहेगी। संपादक मंडल एवं संस्थापक को एक बार पुनः बधाई।

–डॉ. अलका रानी अग्रवाल, एसोसिएट प्रोफसेर एवं विभाक्षाध्यक्ष अंग्रेजी विभाग, नवल किशोर भरतिया म्युनिसिपल कन्या महाविद्यालय चन्दौसी (उ. प्र.)

आदरणीय संपादक महोदय
श्रीदयानन्द जायसवाल
त्रैमासिक पत्रिका 'सुसंभाव्य'

आपके कुशल संपादकीय निर्देशन में निरंतर अग्रगामी लब्धप्रतिष्ठित पत्रिका 'सुसंभाव्य' का अक्टूबर–दिसम्बर 2017 का अंक मुझे प्राप्त हो गया। आपकी ओजस्वितापूर्ण संपादकीय एवं स्तरीय पठनीय सामग्री पत्रिका के उज्ज्वल भविष्य को दिशा देने में समर्थ है। शुभकामनाओं के साथ आभार।

–मीरा श्रीवास्तव, भोजपुर, 8709732548

आदरणीय संपादक महोदय
श्रीदयानन्द जायसवाल
त्रैमासिक पत्रिका 'सुसंभाव्य'

नमस्कार! आपके करकमलों द्वारा मैंने सुसंभाव्य सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका जनवरी–मार्च 2018 का पाया। इसे पढ़कर मन आनंद विभोर हो गया, हालाँकि मैं विगत जब से सुसंभाव्य पत्रिका विमोचन मोक्षदा बालिका विद्यालय भागलपुर में हुआ, तब से आजतक इसे पढ़ता आ रहा हूँ तथा कवि सम्मेलन में भाग ले रहा हूँ।

इस पत्रिका में सर्वप्रथम मैंने कविवर गिरिजा शंकर मोदी के 'इंकिलाब के दिन' शीर्षक कविता ने मेरे मन को झकझोर दिया तथा मन देश की विसंगतियों को देखकर क्रांतिकारी बन गया। संपादकजी! संपादकीय पढ़कर मन आनंदित हो गया। इसके बाद श्रीसुभाषचन्द्र झा का विशिष्ट शोधपूर्ण आलेख 'मिस्ट्री दाई नेम इज वूमेन' में आधुनिक नारियों के मानसिकता, संतानोत्पत्ति, सनातन स्त्रीत्व, स्त्री–पुरुष की समानता आदि मनोभावों को बड़ी सार्थक ढंग से प्रस्तुत किया गये हैं तथा नारी अब बंधनमुक्त, अहंकारी, अभिमानी, पुरुषत्व आदि भावनाओं से ओतप्रोत है। किसी ने ठीक ही कहा है कि ब्रह्माण्ड को समझना आसान है, किन्तु नारी को समझना बहुत जटिल है।

इसके आलावा ग़ज़ल, कविता, कहानी, स्मृति आदि सभी अच्छे

हैं। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि यह पत्रिका एक दिन विश्व में मील के पत्थर साबित होगा। यही मरी ईश्वर से कामना है।

–आपका कवि/गीतकार/गायक कपिल देव कृपाला
लोकवाणी

आदरणीय संपादक महोदय
श्रीदयानन्द जायसवाल
त्रैमासिक पत्रिका 'सुसंभाव्य'

नमस्कार! 'सुसंभाव्य' का अक्टूबर अंक मिला। अंक में एक सूचना है कि भारत सरकार के सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने पत्रिका के नाम 'संभाव्य' के स्थान पर टाइटल कोड 'सुसंभाव्य' के रूप में प्रदान किया है, यह संज्ञा–विशेषण संभावव्य में मात्र गुणात्मक साहित्यिक सामग्री की संभावना के साथ इसमें सुंदर गुणवत्ता सामग्री की उपलब्धता की संभावना को मुखरित करता है। सूचना पढ़कर मुझे एक संत कवि की साखी याद आ गई–

बड़े बड़ाई न करे, बड़े न बोले बोल।
रहिमन हीरा कब कहे, लाख हमारो मोल।।

तो व्यवस्थापकजी ने पत्रिका के गुणात्मक सामग्री पर इसका विनम्र नामकरण 'संभाव्य' किया, तो सरकार के सू.प्र. मंत्रालय ने करके उसकी गुणवत्तापूर्ण साहित्यिक में सौंदर्य का पुट पाकर ही उसका सही नामकरण–'सुसम्भाव्य' करते हुए टाइटल कोड प्रदान किया है, सरकारी विभाग को उनकी गुण ग्राहिता के लिए धन्यवाद और प्रधान संपादक/व्यवस्थापक तथा संपादन तथा व्यवस्था से जुड़े तमाम साहित्यिक सुधी समाज को इस हेतु बधाई।

संपादकीय लेख पत्रिका का आनन है ही नहीं, आईना होता है। इस अंक के पुरोवाक् में विद्वान लेखक ने देश की वर्तमान राजनीति परिदृश्य में देश के भविष्य की नाव के खेवनहार को लेकर बिना किसी का नाम लिये जो तीक्ष्ण व्यंग्य किया है, वह अनुपम है। इसी तरह उन्होंने बिना किसी व्यक्ति या घटना विशेष का प्रसंग दिये धर्म को राजनैतिक व्यवसाय बनाकर अपनी रोजी रोटी कमाने का धंधा कर रहे हैं, भेड़ का खाल ओढ़े भेड़ियों पर तीखा प्रहार किया है और इन व्यक्तियों को एक बेहद स्वस्थ विचार दिया है कि विभिन्न धर्मों का अगर गहन अध्ययन किया जाये तो सबने प्रेम और अहिंसा की सीख दी है। कोई भी मजहब हमें नफरत नहीं सिखाता। अगर हम दूसरे मजहब के बारे में पढ़ना शुरू करें तो नफरत का निशान नहीं रहेगा। डॉ. अनवर जलालपुरी द्वारा श्रीमद्भगवद्गीता के छंदों का उर्दू के अशआरी में अनुवाद, श्रीजायसवाल के कथन की पुष्टि करता है। संभवतः यह राजनैतिक स्वार्थ है, जो धर्म के दूध में राजनीति का लौविश घोलकर दूध को फाड़ रहा है, अन्यथा जायसवालजी के कथन की पुष्टि में मेरा व्यक्तिगत अनुभव शामिल है, बैंगलूर के नारायणा हृदयालया नामक विशाल अस्पताल के परिसर में गणेश मंदिर के सिटी मस्जिद में मैंने रमजान के मुकद्दस महीने में शाम को रोजा इफतार का आयोजन और मंदिर में सायंकाल आरती के साथ प्रसाद वितरण एक साथ पूरे तीन सप्ताह के प्रवास में पूरी तरह शान्ति, सद्भाव और पूरे भाईचारे के साथ सम्पन्न होते देखा है। रोजा रखनेवाले धर्मावलंबी रोजा इफतार के लिए अपने बंधुओं का लाया गया खाद्य पदार्थ आरती में शामिल होनेवाले धर्मावलंबियों के बड़े सम्मान और स्नेह से वितरित करते थे और लेनेवाले उसे पूर्ण सम्मान से ग्रहण करते थे। जुमायतुल विदा की नमाज के समय वहाँ परिसर के अंदर तो क्या आसपास भी पुलिस नहीं थी।

विद्वान लेखक ने अपने लेख में धर्म में से आध्यात्मिकता के विलुप्त होने का तथ्य प्रतिपादित किया है, जो जग सत्य है, अगर धर्म में अध्यात्म यानी आत्मचिंतन का भाव होता तो जो कुछ आपराधिक और मानवता विरोधी घटनाएँ कुछ प्रदेशों में स्वघोषित धर्म के नाम पर घटी, वह नहीं घटती। गाय पर राजनीति हो रही है और गौशालाओं में गायें भूखी मर रही हैं, तो साठ के दशक के प्रारंभ में प्रदर्शित एक बेहद सफल फिल्म 'मुगल–ए–आजम' का एक संवाद याद आ गया–जिससे अकबर अनारकली से कहता है–अनारकली सलीम तुझे मरने नहीं देगा और हम तुझे जीने नहीं देंगे। गाय हमारी संस्कृति का आधार है, अगर जीवन के लिए उसे पूरी सुरक्षा के लिए उस पेटभर खाना समय पर मिले, इसका प्रबंध होना चाहिए। सिर्फ राजनीति के लिए गाय को जिंदा रखना मकसद नहीं होना चाहिए। विद्वान लेखक ने आज धर्म के अध्यात्म और मानव से मानवता के विलुप्तीकरण पर शांत आक्रोश प्रकट करते हुए महान दार्शनिक डॉ. राधाकृष्णन का कथन उद्धृत किया है और राजनैतिक आदर्श राजनैतिक लोगों के मानवीय मूल्यों पर आधारित पथ पर चलने से ही स्थापित होंगे, इसका उल्लेख किया है और सांकेतिक रूप से साहित्यकारों द्वारा साहित्य अकादमियों द्वारा प्राप्त पुरस्कारों को लौटाने का प्रसंग बेहद व्यंजनात्मक स्वरूप में प्रस्तुत किया है, ऐसे विचार पूर्ण पुरोवाक् के लिए लेखक हार्दिक बधाई और साधुवाद के पात्र हैं। उन्होंने बिना किसी व्यक्ति या घटना का नाम लिये ही सारी घटनाओं का विवरण उनसे समाज के विखंडन का परिणाम और धर्म का राजनीति चलाने के लिए प्रयोग के खतरनाक अंजाम का सटीक विवरण अपने छोटे से लेख में समाहित कर दिया है। गागर में सागर भरना अपने आपमें विद्वत्ता का मापदंड है।

'थकी हुई सीढ़ियों' शीर्षक असामान्य लगता है, मगर कहानी गांधवादी विचारधार के आज भी प्रासंगिक होने को ध्वनित करती है। किन्तु लेखक अगर कथा के अंतिम वाक्य–सावित्री भी बैठ गयी के बाद–उन्हें इस तरह बैठते देख लिपिक चेतन शर्मा ने कंप्यूटर पर गेम खेलना बंद किया और उनके पास जाकर बोला–आप इस तरह धरना पर नहीं बैठें, मैं आपका काम अभी करता हूँ, आप उठिये और कुर्सी पर बैठ जाइए–जोर देते हुए गांधीगिरी का त्वरित प्रभाव प्रसारित होता।

छोटे मालिक कहानी में लेखक का ठाकुर को एक नृशंस और लालची खलनायक के रूप में प्रस्तुत करना यथार्थवाद का संभाव्य हो सकता है, किन्तु इस उद्देश्य में वह देश–काल, वातावरण पात्र और चरित्र में संतुलन नहीं रख सके। जमींदार लोग कभी भी ब्राह्मण वर्ग और विशेष रूप से उनके कुल पुरोहित के साथ इतना क्रूर नहीं हो सकते। अगर ऐसी घटनाएँ जमींदारी प्रथा के काल वास्तव में हुई होती तो धर्म के नाम पर आडम्बर पूर्ण कर्मकांड पर प्रचार–प्रसार नहीं होता। ब्राह्मण वर्ग दीन होते हुए भी कभी इतना कर्मनिष्ठ नहीं हुआ कि वह खेती जैसा श्रमसाध्य कार्य करने का मानस बनाता और एक ब्राह्मण की पत्नी घरों में चौका बर्तन (झूठे बर्तन धोने) का काम स्वीकार करें, इसे तो आज भी आम धर्मप्राण समाज स्वीकार नहीं कर सकता। छोटे मालिक के परिवार के पात्रों का चरित्र–चित्रण भी संतुलन प्रतीत नहीं होता। कथानक और पात्र लेखकर की लेखनी से फिसलते रहते हैं।

पत्रिका समीक्षा प्रधान है, अतः पुस्तकों की समीक्षा की प्रमुखता है, किंतु समीक्षा भी अन्य अंतर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं की तरह मात्र स्तंभ को प्रकाशित करने के लिए नहीं है। पुस्तक और लेखक के बारे में पूरा विवरण देती है।

काल सापेक्ष की ज्ञान लौ तेज करता शीर्षक से 'कथा कशिका' की समीक्षा में समीक्षक का कथन है कि 'कथा कशिका' भी क्षेत्र विशेष से जुड़ी हुई है, मगर एक ऐतिहासिक कहीं अधिक है। लेखक सैन्य अधिकारी है, अतः यह कथन सत्य ही होगा तभी, अन्यथा क्षेत्र विशेष विषयक आंचलिक लेखन में प्रायः होता यह है कि लेखक सामग्री स्थानीय लोगों के स्थानीय स्तोत्रों (जो प्रायः किंवदन्तियाँ पर आधारित होती हैं) से प्राप्त करता है, अतः कई अतिरंजनाओं से पूर्ण वह सामग्री इतिहास और तर्क सम्मत नहीं होने के कारण प्रामाणिकता से परे होती है, इसलिए इस पर विवाद खड़े हो जाते हैं और यह लेखन मात्र एक किस्सागोई बन जाता है। समीक्षक ने 'कालाचन्द' कहानी के अंत में जो टिप्पणी दी है–इस कथा में एक तरफ प्रेम.....ठेकेदार होते हैं और कहानी राजा खेत सिंह की समीक्षा के अंत में आरक्षण के संबंध में दी गई टिप्पणी 'नई सामाजिक

व्यवस्था.....हिचके नहीं।' बेहद सामयिक है। प्रसंगानुकूल है, किन्तु 'राजधर्म' कहानी में शिलाधिय का (संभवतया शिलादित्य का)राजस्थान (तत्कालीन राजपूताने) को तुर्कों और अरबों से मुक्त कराने का उल्लेख इतिहास सम्मत प्रतीत नहीं होता। 'कथा कशिका' के लेखक स्वयं एक उच्च सैन्य पदाधिकारी है, अतः उनके लेखन में बाजीराव की वीरता के सम्मान में ही सही, एक बाजी सब पाजी जैसी उक्ति कुछ कटु प्रतीत ही होती है। सैनिक हर विपक्षी सैनिक का भी सैनिकोचित सम्मान करते हैं। सैनिक अधिकारी द्वारा मुगलकालीन शासन और राजवंश से संबंधित कुछ अबतक अज्ञात पदाधिकारियों और राजपरिवारों से संबंधित व्यक्तियों के नामों का प्रकाशन अभूतपूर्व है।

समीक्षक ने पुस्तक का गहन समीक्षक की दृष्टि से सिंहावलोकन किया है, अतः समीक्षक की दृष्टि की भी प्रशंसा करनी होगी कि तिथि में मुद्रण त्रुटि भी उनकी नजर से बच नहीं सकी। इस प्रकार संक्षिप्त में विशद परिचयात्मक समीक्षा के लिए समीक्षक और आग्नेयास्त्र के साथ लेखनास्त्र के सफल उपयोग करते हुए विमर्श विरुद्ध लेखन के लिए कर्नल अजीतदत्त साधुवाद के पात्र हैं।

निर्मल वर्मा एक प्रमुख कहानीकार थे, उनके लेखन के बारे में प्रस्तुत लेख संभवतया लेखक के शोध विषय पर लेखन का अंश है, इसमें आचार्य द्विवेदी का एक कथन आत्मवंचना अर्थात् आत्मबोध के अभाव में अद्वैत की टिकी अनुभूति असंभव है, प्रस्तुत किया है।इसमें आत्मवंचन अर्थात् आत्मबोध के रूप में इन दोनों शब्दों का लेखन अर्थ को विरल कर देता है, क्योंकि आत्मवंचना और आत्मबोध एक दूसरे के विपरीत अर्थवाले शब्द हैं। लेख शोध छात्र का है, तो विरल को सरल बनाना भी उनका ही कार्य है।इसको वह सीधे कह सकते थे–आत्मबोध के अभाव में अद्वैत कोटि की अनुभूति असंभव है और अद्वैत कोटि की अनुभूति की संलग्नता के सर्वव्यापी बोध से समानता का कथन भी तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता।

हिन्दी की चुनौतियों में विद्वान लेखक ने काफी विद्वत्तापूर्ण तर्क हिन्दी के प्रचार–प्रसार में बाधा के रूप में प्रस्तुत किये हैं, किन्तु राष्ट्रभाषा और राजभाषा की चर्चा करते हुए वह राष्ट्रभाषा के स्थान पर राजभाषा के साथ अंग्रेजी का हठपूर्वक प्रयोग विस्मृत कर गये। पंजाब राज्य की सभी सीमाएँ हिंदी भाषी राज्य से जुड़ी है,मगर वहाँ बाजारों से दुकानों के नाम से आमजन हित से जुड़े सभी सूचनापट्ट, सरकारी कार्यालयों के नामपट्ट पंजाबी भाषा की गुरुमुखी लिपि और सहायक भाषा अंग्रेजी में है। अब इसके पड़ोसी हिन्दी भाषी शहरों का निवासी अपने किसी काम से आता है, जो हिन्दीभाषी होने के कारण पंजाबी भाषा और लिपि तथा अंग्रेजी भी नहीं जानता तो वह सूचनापट्टों पर लिखी सूचना का प्रयोग कैसे करेगा, जबकि सभी पंजाबी हिन्दी भाषा जानते हैं, बोलते हैं और उसकी लिपि भी अपरिचित नहीं होते, किन्तु अस्सी के दशक में पंजाब में आतंकवाद के बाद से संभवतया तुष्टीकरण की नीति के तहत पंजाब की राजभाषा का राजनैतिक रूप से प्रशासनिक और सामाजिक रूप में भी स्वीकार कर लिया गया। अपनी क्षेत्रीय भाषा और लिपि के प्रति ऐसी हठधर्मिता तो दक्षिण से भी नहीं देखी जातीं।

'मयंक की ज्योत्स्ना' नामक लेख पत्रिका में अंतिम समीक्षात्मक लेख है, इसमें समीक्षक ने अपने साहित्यिक ज्ञान का भरपूर प्रसाद पाठकों को सहृदयता से वितरित करते हुए कवि मयंक की कविता के बारे में बेहद भाव प्रणय और काव्यमय शब्दों का प्रयोग किया है। हर मनुष्य की आत्मा के आंगन में पीपल का पेड़ होना चाहिए–धूप को चांदनी में बदलने की ख्वाहिश आकाश के सांध्य सूर्य गैरिकवसन के ढक देने की चाह–कवि की कविता से अधिक काव्यमय प्रतीत होते हैं। कवि ने गृहवधू के गुण में दो पंक्तियाँ प्रस्तुत की हैं–

चंचल नयन चांद सा मुखड़ा कोयल जैसी मीठी वाणी हो
मेरा घर वृन्दावन, मधुवन घूंघट में बहुरानी हो।

इसे वह इस तरह से–

चंचल नयन चांद सा मुखड़ा कोयल सम मृदृवाणी हो
मेरा घर, मधुवन, वृन्दावन घूंघट में बहुरानी हो। (लोकमान्यता के अनुसार मधुवन के बाद वृन्दावन आता है।) सोचकर देखें तो लय भंग का दोष प्रतीत नहीं होगा।इसी तरह–

निर्दय हो माँ कह गई मत आना बेटी गाँव
घर आँगन खलिहान भी धारा में बह गया ठाँव।को–
निर्दय हो माँ कह गई मत जा बेटी गाँव
घर आँगन खलिहान संग बहा बाढ में ठाँव।

ग़ज़लों के बारे में मेरा ज्ञान पढ़ने और उनका आनंद लेने तक ही सीमित है, मगर वरिष्ठ ग़ज़लकार–जनाब जहीर कुरैशी साहब, केशव भूषण और डॉ. मनाजिर आशिक की ग़ज़लें बेहद दिलकश है, पुर असर है। अशोक मिजाज की ग़ज़ल अशआर भी असर छोड़ते हैं, मंजुलाजी की ग़ज़ल भी अच्छी है। इसे ग़ज़ल के आखिरी शेर में दश्त (जंगल) के स्थान पर दस्त मुद्रण त्रुटि है, जिससे पाठक का जायका बिगड़ जाता है और इसी तरह दूसरी ग़ज़ल के आखिरी शेर में इश्क का अवल से क्या मतलब के स्थान पर अश्क में अक्ल होना चाहिए।

कंप्यूटर टाइप में मेरे जैसे अव्यावसायिक टाइपकर्ता द्वारा उर्दू शब्दों में नुक्ता का आवश्यक प्रयोग बेहद श्रमसाध्य ही नहीं दुष्कर है, अतः क्षमाप्रार्थी हूँ।

श्रीविजयवर्धन की हिन्दी ग़ज़ल किसी प्राचीन कवि की हिन्दी कविता–'था कली के रूप में शैशव अहो सूखे सुमन, हाय काता था, था झुलाता अंक में तुमको पवन।' का भावानुवाद प्रतीत होता है। भावानुवाद बेहद मुश्किल काम होता है, किन्तु कांटों का मां की गोद में उपमा कांटे की तरह ही चुभती है। साथ ही–तू सोचता है शूल, मेरे सामने है धूल, रे मूर्ख तेरी जिंदगी है भूचाल के–जिंदगी है भूचाल से कोई सार्थक सरल अर्थ प्रतिपादित नहीं होता। प्रस्तुत अंक में मां पर दो रचनाएँ हैं श्रीजितेन्द्र जौहर की कविता में–ऊँच चढ़ चढ़ कहत जसोदा लेले नाम कन्हैया, दूर कहूं मत जओ लालरे मारेगी काऊ की गैया। जैसा वात्सल्य भाव है,मगर वाक्यक्रम की विरलता ने उसका पूरी तरह प्रकाशन नहीं होने दिया। श्रीसुरेन्द्र शर्मा का मां आख्यान भावप्रवण है, कुछ दोहों में मात्राओं का अनुशासन भंग है।मगर मां आखिर मां है।

सीमा असीम की कविता दिन भी तपता कंदील–सा आकाश में टंगा सूरज–सूर्य की तुलना कंदील से करना तर्कसंगत नहीं है। कंदील में दीपक जलता है, जिसका मद्धिम प्रकाश सुखदायक होता है, दहन–सा कष्टदायक नहीं।

कुछ कविताएँ आधुनिक अतुकान्त कविताओं की श्रेणी की हैं, जिनके बारे में एक प्रसिद्ध व्यंग्यकार लेखक ने लिखा था–नई अतुकान्त कविता चाहे स्त्री करे या पुरुष इसकी रचना प्रक्रिया कवि के मस्तिष्क में लघुशंका के विसर्जन की भांति होती है अर्थात् एक बार शुरू हुई तो पूर्ण विसर्जन के बाद समाप्त होती है, अतः ऐसी कविताओं का लेखन लेखक की सृजनात्मक ऊर्जा का अपव्यय ही है। युवा लेखक इससे आगे बढ़कर अपनी सृजनात्मक ऊर्जा का प्रयोग सही दिशा में करके साहित्य को कुछ नया सौंदर्यपूर्ण देने का प्रयास करें, तो शुभम् और सुन्दरम् होगा।

बेक्ड कविता शायद हायकू की तरह कोई नई विधा है, मगर प्रभावित करती है। शशिकलाजी भावुक गीत प्रस्तुत करते करते कुछ जल्दबाजी में उसमें नई कविता का पुट देकर रेशमी साड़ी के साथ खादी का ब्लाउज प्रयोग कर बैठी लगती है।जौहरी द्वारा हीरे की परख के बाद पत्रिका के नाम संभाव्य को सुसंभाव्य को सार्थक बनाये रखने के लिए मुद्रण त्रुटियों का परिमार्जन आवश्यक है। धन्यवाद!

–मनोरंजन सहाय सक्सेना, ए–25 इन्द्रपुरी, लालकोठी, टौंक रोड, जयपुर राजस्थान।

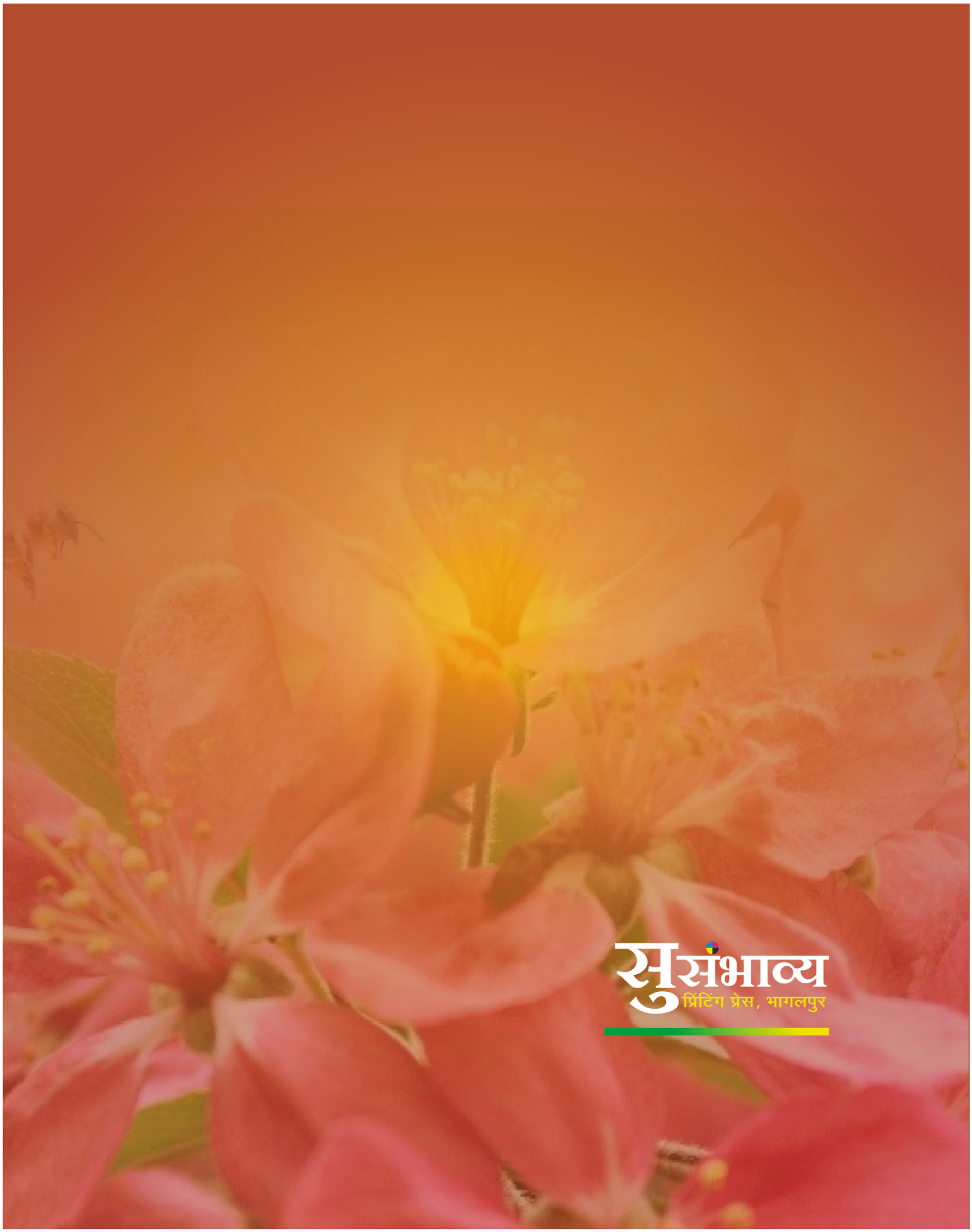
सुसंभाव्य
प्रिंटिंग प्रेस, भागलपुर